सहगल प्रकाशन सं० ५

चाँद-सितारे

रवीन्द्र नाथ ठाकुर

प्रकाशक
नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज
चौक फतहपुरी, देहली ६

प्रकाशक :—
बलराज सहगल
प्रो०:-नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज
चौक फतहपुरी, देहली ६

तीसरा संस्करण
मूल्य——दो रुपया आठ आना

मुद्रक :—
महालक्ष्मी प्रेस,
दरीबा कलां,
देहली।

हम आभारी हैं........

उन हिन्दी प्रेमियों के जिन्होंने "चांद सितारे" का हृदय से सम्मान किया। उसी सम्मान के फलस्वरूप हम इसका तीसरा संस्करण प्रकाशित करने के लिये बाध्य हुए हैं।

श्री मनूर फरश्री, देहरादून के जिन्होंने चांद सितारे के प्रथम संस्करण में रह गई त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान दिलाया केवल यही नहीं बल्कि हमारे अनुरोध पर अस्वस्थ होते हुए भी इन त्रुटियों और अशुद्धियों को दूर करने में पूर्ण रूप से सहयोग दिया।

—प्रकाशक

अपनी बात

कवि-सम्राट रवीन्द्र नाथ ठाकुर की सर्व गुण सम्पन्न प्रतिभा से प्रायः प्रत्येक व्यक्ति परिचित है उनकी प्रतिभा के विषय मे और कुछ मेरा लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी कि कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उन कहानियों का हिन्दी में संग्रह करूँ जो कि पढ़ने में मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं। अब मुझे उनकी कहानियों के संग्रह का अवसर मिला और यह 'चाँद सितारे' कहानी संग्रह आपके सामने है। वैसे एक सर्वतोमुखी लेखक की कृतियों में से यह कह सकना कि कौन सर्व श्रेष्ट है या कौन चाँद और कौन सितारे हैं, बहुत कठिन है। फिर भी मैंने इस संग्रह में उन कहानियों को रखा है जो मुझे विशेष अच्छी लगीं। वैसे तो मनुष्य का जीवन ही एक कहानी है और उसके जीवन में प्रति दिन घटित होने वाली घटनाएं कहानियों का सग्रह है। रविबाबू की कहानियाँ भी मनुष्य जीवन के बहुत निकट हैं। इन कहानियों

को पढ़ कर प्रत्येक पाठक अपने ही जीवन की घटना समझता है। कहानी की विशेषता भी यही है।

मैंने इन कहानियों में पाँडित्य प्रदर्शन की बजाए सीधी-सादी सरल हिन्दी में अनुवाद किया है। अनुवाद कार्य में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ ? कैसा बन पड़ा है ? इस बात का पाठक स्वयं निर्णय कर सकेंगे ?

दिल्ली
१६.५२

श्रीकृष्ण गुप्त

अन्तिम प्यार

आर्ट स्कूल के प्रोफेसर मनमोहन बाबू घर पर बैठे मित्रों के साथ मनोरंजक वार्तालाप कर रहे थे, ठीक उसी समय योगेश बाबू ने कमरे में प्रवेश किया।

योगेश बाबू चित्रकार थे, उन्होंने अभी थोड़े समय पूर्व ही स्कूल छोड़ा था। उन्हें देख कर एक व्यक्ति ने कहा–'योगेश बाबू! नरेन्द्र क्या कहता है, आपने सुना?

योगेश बाबू ने आराम कुर्सी पर बैठ कर पहले तो एक लम्बी साँस ली। तत्पश्चात् बोले—"क्या कहता है?"

"नरेन्द्र कहता है बंग प्रान्त में उसकी कोटि का कोई भी चित्रकार इस समय नहीं है।"

"ठीक है, अभी कल का छोकरा है। हम लोग तो जैसे आज तक घास छीलते रहे हैं।" झुंझलाकर योगेश बाबू ने कहा।

जो लड़का बातें कर रहा था उसने कहा—"केवल यही नहीं, नरेन्द्र आप को भी अच्छी नजर से नहीं देखता।'

योगेश बाबू ने लापरवाही से कहा—"क्यों, कोई अपराध?"

"वह कहता है आप आदर्श का ध्यान रख कर चित्र नहीं बनाते।"

"तो किस दृष्टिकोण से बनाता हूँ?"

"रुपये के लिये।"

योगेश ने एक आँख बन्द करके कहा—"व्यर्थ" फिर आवेश में कान के पास से अपने अस्त-व्यस्त बालों को व्यवस्था देकर बहुत देर तक मौन बैठा रहा। चीन का जो सब से बड़ा चित्रकार हुआ है उसके बाल भी बहुत बड़े थे। यही कारण था कि योगेश ने भी स्वभाव विरुद्ध सिर पर लम्बे-लम्बे बाल रखे हुए थे। ये बाल उसके मुख पर अत्यन्त कुरूप प्रतीत होते थे। क्योंकि बचपन में एक बार चेचक के आक्रमण से उसके प्राण तो बच गये थे किन्तु मुख बहुत कुरूप हो गया था। एक तो श्याम-वर्ण दूसरे चेचक के छिद्र। मुख देख कर सहसा यही जान पड़ता था, मानों किसी ने बन्दूक में छर्रे भर कर मुख को लक्ष्य बनाया हो।

कमरे में जो लड़के बैठे थे वह योगेश बाबू को क्रोधित देख कर उसके समक्ष ही मुंह बन्द करके हंस रहे थे।

सहसा वह हंसी योगेश बाबू ने भी देख ली। क्रोद्ध स्वर बोले—"तुम लोग हंस रहे हो, क्यों?"

एक लड़के ने चाटुकारिता से जल्दी-जल्दी कहा—"नहीं महाशय! आप को क्रोध आए और हम लोग हंसें, यह कभी संभव हो सकता है?"

"हूँह! मैं समझ गया—अब व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं। क्या तुम लोग यह कहना चाहते हो कि अब तक तुम दांत निकाल कर रो रहे थे, मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूं।" यह कह कर योगेश बाबू ने आंख बन्द कर ली।

लड़कों ने किसी तरह हंसी रोक कर कहा—"चलिये यूं ही सही, हम हंसते थे रोते क्यों? नरेन्द्र के पागलपन को सोच कर हंसते थे। यह देखो मास्टर साहब के साथ नरेन्द्र भी आ

रहा है ?"

मनमोहन बाबू के साथ-साथ नरेन्द्र भी कमरे में आ गया।

योगेश ने एक बार नरेन्द्र की ओर वक्रदृष्टि से देख कर मनमोहन बाबू से कहा—"महाशय! नरेन्द्र मेरे विषय में क्या कहता है ?"

मनमोहन बाबू जानते थे कि उन दोनों में लगती है। दो पाषाण जब परस्पर टकराते हैं तो अग्नि उत्पन्न हो जाती है। वह समझ गये कि आज भी कुछ न कुछ हो कर ही रहेगा। आहिस्ता-आहिस्त। हंसते हुए बोले—"योगेश बाबू नरेन्द्र क्या कहता है ?"

"नरेन्द्र कहता है कि मै रुपये के लिये चित्र बनाया हूँ। मेरा कोई आदर्श नहीं है ?"

मनमोहन बाबू ने पूछा—"क्यों नरेन्द्र ?"

नरेन्द्र अब तक मौन खड़ा था, अब किसी तरह आगे आ कर बोला—"हाँ कहता हूँ, मेरी यही सम्मति है।"

योगेश बाबू ने मुंह बना कर कहा—"बड़े सम्मति देने वाले आये। छोटे मुंह बड़ी बात। अभी कल का लड़का और इतनी बड़ी-बड़ी बाते।"

मनमोहन बाबू ने कहा—"योगेश बाबू जाने दीजिये, नरेन्द्र अभी लड़का है और बात भी साधारण है। इस पर वाद विवाद की क्या क्या आवश्यकता है ?"

योगेश बाबू उसी तरह आवेश मे बोले—"लड़का है! नरेन्द्र लड़का है। जिसके मुंह पर इतनी बड़ी-बड़ी मूंछ! वह यदि लड़का है तो बूढ़ा कौन होगा। मनमोहन बाबू आप क्या कहते हैं ?"

एक विद्यार्थी ने कहा—"महाशय अभी जरा देर पहले तो

आपने उसे कल का छोकरा बताया था।"

योगेश बाबू का मुख क्रोध से लाल हो गया। बोले—"कब कहा था?"

"अभी इस से जरा पहले।"

"असत्य, सर्वथा असत्य। जिसकी इतनी बड़ी-बड़ी मूछें हैं उसे लड़का कहूँ, असम्भव है। क्या तुम लोग यह कहना चाहते हो कि मैं बिल्कुल मूर्ख हूँ।"

सब लड़के एक स्वर से बोल उठे—"नहीं महाशय! ऐसी बात हम भूल कर भी जबान से नहीं कहते।"

मनमोहन बाबू किसी तरह हंसी को रोक कर बोले—"चुप-चुप! गोल माल न करो।"

योगेश बाबू ने कहा—"हां नरेन्द्र! तुम यह कहते हो कि बंग प्रान्त में तुम्हारी टक्कर का कोई चित्रकार नहीं है।"

नरेन्द्र ने कहा—"आपने कैसे जाना?"

"तुम्हारे मित्रों ने कहा।"

मैं यह नहीं कहता। तब भी इतना अवश्य कहूंगा कि मेरी तरह हृदयरक्त पीकर बंगाल में कोई भी चित्र नहीं बनाता।'

"इस का प्रमाण?"

नरेन्द्र ने आवेशमय स्वर में कहा—"प्रमाण की क्या आवश्यकता है। मेरा यही विचार है।"

"तुम्हारा विचार असत्य है।"

नरेन्द्र बहुत कम बोलने वाला व्यक्ति था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

मनमोहन बाबू ने इस अप्रिय वार्तालाप को बंद करने के लिए कहा—"नरेन्द्र इस बार प्रदर्शनी के लिये तुम चित्र बनाओगे ना?"

नरेन्द्र ने कहा—"विचार तो है।"

"देखूंगा तुम्हारा चित्र कैसा रहता है।"

नरेन्द्र ने श्रद्धा भाव से उनकी पग-धूलि लेकर कहा—"जिस के गुरु आप है उसे क्या चिन्ता। देखना सर्वोत्तम रहेगा।"

योगेश बाबू ने कहा—"राम से पहले रामायण! पहिले चित्र बनाओ फिर कहना।"

नरेन्द्र ने मुँह फेर कर योगेश बाबू की ओर देखा। कोई भी बात न कही, किन्तु इस मौन भाव और उपेक्षा ने बातों से कहीं अधिक योगेश के हृदय को कष्ट पहुचाया!

मनमोहन बाबू ने कहा—"योगेश चाहे आप कुछ भी कहे मगर नरेन्द्र को अपनी आत्मिक शक्ति पर बहुत बड़ा विश्वास है। मै दृढ़ निश्चय से कह सकता हूँ कि यह भविष्य मे एक बड़ा प्रसिद्ध चित्रकार होगा।"

नरेन्द्र आहिस्ता-आहिस्ता कमरे से बाहर चला गया।

एक विद्यार्थी ने कहा—"मास्टर जी, नरेन्द्र मे किसी सीमा तक विक्षिप्तता की झलक दिखाई देती है।"

मनमोहन बाबू ने कहा—"हां यह मै मानता हूं कि जो व्यक्ति अपने भाव अच्छी तरह प्रगट करने मे सफल हो जाता है, उसे सर्व-साधारण किसी सीमा तक विक्षिप्त समझते है। चित्र मे एक विशेष प्रकार का आकर्षण तथा मोहकता उत्पन्न करने की उसमें असाधारण योग्यता है। तुम्हें मालूम है नरेन्द्र ने एक बार क्या किया था। मैने देखा कि नरेन्द्र के बाएँ हाथ की उंगली से खून का फव्वारा छूट रहा है और वह बिना किसी कष्ट के बैठा हुआ चित्र बना रहा है। मै तो देखकर चकित रह गया। मेरे मालूम करने पर उसने उत्तर दिया कि उंगली

काटकर देख रहा था कि खून का वास्तविक रंग क्या है। अजब व्यक्ति है। तुम लोग इसे विक्षिप्तता कह सकते हो, किन्तु इसी विक्षिप्तता के ही कारण तो वह एक दिन अमर कलाकार कहलाएगा।"

योगेश बाबू एक आंख बन्द करके सोचने लगे। जैसे गुरु वैसे चेले—दोनों के दोनों पागल हैं।

: २ :

नरेन्द्र सोचते सोचते मकान की ओर चला—रास्ते में जन-साधारण के समूह का यातायात था। कितनी ही गाड़ियां चली जा रही थीं किन्तु इन बातों की ओर उसका ध्यान न था। उसे क्या चिन्ता थी? उसकी दशा केवल वही जाने।

वह थोड़े से समय के अन्दर ही बहुत बड़ा चित्रकार हो गया इस थोड़े से समय में वह इतना सुप्रसिद्ध और सर्व प्रिय हो गया था कि उसके ईर्षालु मित्रों को अच्छा न लगा। इन्हीं ईर्षालु मित्रों में योगेश बाबू भी थे। नरेन्द्र में एक विशेष योग्यता और उसकी तूलिका में एक असाधारण कोमलता है। योगेश बाबू इसे दिल ही दिल में खूब समझते थे। परन्तु ऊपर से इसे मानने के लिये तैयार न थे।

इतने थोड़े से समय में ही उसके इतनी प्रसिद्धि प्राप्त करने का एक विशेष कारण भी था। वह यह कि नरेन्द्र जिस चित्र को भी बनाता था अपनी सारी योग्यता उसमें लगा देता था। उसकी दृष्टि केवल चित्र पर रहती थी, पैसे की ओर मुड़ कर भी उसका ध्यान नहीं जाता था। उसके हृदय की महत्वाकांक्षा थी कि चित्र बहुत ही सुन्दर हो। उसमें अपने ढंग की विशेष विलक्षणता हो

मूल्य चाहे कम मिले या अधिक। वह अपने विचार और भावनाओं की मधुर रूपरेखाएँ अपने चित्र में देखता था। जिस समय चित्र चित्रित करने बैठता तो हर तरफ फैली हुई असीमित प्रकृति और उसकी सारी रूप रेखायें हृदय पट से गुम्फित कर देता था। इतना ही नहीं, वह अपने अस्तित्व से भी विस्मृत हो जाता था। वह उस समय पागलों की भाँति दिखाई पड़ता था उस समय अपने प्राण तक उत्सर्ग कर देने से भी संभवतः उसको संकोच न होता। यह दशा उस समय की एकाग्रता की होती थी। वास्तव में इसी कारण से उसे यह सम्मान प्राप्त हुआ था। उसके स्वभाव में सादगी थी, वह जो बात सादगी से कहता, लोग उसे अभिमान और प्रदर्शनी से लदी हुई समझते थे, उसके सामने कोई कुछ न कहता था, परन्तु पीठ पीछे लोग उसकी बुराई करने से न चूकते, सब के सब नरेन्द्र को संज्ञाहीन सा पाते थे, वह किसी बात को कान लगाकर न सुनता था, कोई पूछता कुछ, और वह जबाब देता था कुछ, वह सर्वदा ऐसा प्रतीत होता जैसे अभी-अभी स्वप्न देख रहा था और किसी ने सहसा उसे जगा दिया हो, उसने विवाह किया और एक लड़का भी उत्पन्न हुआ था, पत्नी बहुत सुंदर थी, परन्तु नरेन्द्र को गृहस्थिक विषयों में किसी प्रकार का आकर्षण न था, तब भी उसका हृदय प्रेम का अथाह समुन्द्र था, वह हर समय इसी धुन मे रहता था कि चित्र कला में प्रसिद्धि प्राप्त करे। यही कारण था कि लोग उसे पागल समझते थे। किसी हल्की वस्तु को यदि पानी मे जबरदस्ती डुबो दो ता वह किसी तरह न डूबेगी अवश्य ऊपर तैरती रहेगी। ठीक यही दशा उन लोगो की है जो अपनी धुन के पक्के होते है। वह सांसारिक दुःख-सुख मे किसी तरह डूबना नहीं जानते। उनका हृदय हर समय

कार्य की पूर्ति में संलग्न रहता है।

नरेन्द्र सोचते सोचते अपने मकान के सामने आ खड़ा हुआ। उसने देखा कि द्वार के समीप उसका चार साल का बच्चा मुंह में उंगली डाले किसी गहरी चिन्ता में खड़ा है। पिता को देखते ही बच्चा दौड़ता हुआ आया और दोनों हाथों से नरेन्द्र को पकड़ कर बोला—"बाबू जी—"

"क्यों बेटा ?"

बच्चे ने पिता का हाथ पकड़ लिया और खींचते हुए कहा—"बाबू जी ! देखो हमने एक मेंढ़क मारा है। वह लंगड़ा हो गया है—"

नरेन्द्र ने बच्चे को गोद में उठा कर कहा—"तो मैं क्या करूं ? तू बड़ा पाजी है।"

बच्चे ने कहा—"वह घर नहीं जा सकता—लंगड़ा हो गया है, कैसे जाएगा ? चलो उसे गोद में उठाकर घर पहुंचा दो।"

नरेन्द्र ने बच्चे को गोद में उठा लिया और हंसते-हंसते घर में ले गया।

: ३ :

एक दिन नरेन्द्र को ध्यान आया कि इस बार प्रदर्शनी में किसी प्रकार का चित्र देना चाहिए। कमरे की दीवार पर उसके हाथ के कितने ही पूर्ण चित्र लगे हुए थे। कहीं प्राकृतिक दृश्य, कहीं मनुष्य के शरीर की रुप-रेखा और कहीं स्वर्ण की भाँति सर-सों के खेत पास हरियाली तथा जंगली मन मोहक दृश्यावलि, कहीं वह रास्ते जो छाया वाले वृक्षों के नीचे से टेढ़े तिरछे होकर नदी के पास जा मिलते थे। धूँवे की भाँति गगन-चुम्बी पहाड़ों

की पंक्ति, जो तेज़ धूप में स्वयं झुलसी जा रहा था, सकड़ा पथिक धूप से जल भुन कर छाया वाले वृक्षों के समूह में शरणार्थी इसी प्रकार के कितने ही दृश्य थे। दूसरी ओर अनेको पक्षियों के चित्र थे। उन सब के मनोभाव उनके मुखों से प्रकट हो रहे थे। कोई गुस्से मे भरा हुआ, कोई चिन्ता की अवस्था मे; तो कोई प्रसन्न मुख।

कमरे के उत्तरीय भाग मे खिड़की के समीप एक अपूर्ण चित्र लगा हुआ था। उसमें ताड़ के वृक्षों के समूह के समीप सर्वदा मौन रहने वाली छाया के आश्रय में एक सुन्दर नवयुवती नदी के श्याम-वर्ण जल मे अचल बिजली की भाति मौन खड़ी थी। उसके होठो और मुख की रेखाओ में चित्रकार ने हृदय को पीड़ा अत्याधिक भर दी थी। ऐसा मालूम होता था मानो चित्र बोलना चाहता है, किन्तु यौवन अभी तक उसके शरीर पर पूरी तरह प्रस्फुटित न हुआ था।

इन सब चित्रो मे चित्रकार के इतने दिनो की आशा और निराशा मिली हुई थी। परन्तु आज उन चित्रो की रेखाओ और रंग-रोगन ने नरेन्द्र को अपनी ओर आकर्षित न किया। उसके हृदय में बार-बार यही विचार आने लगे कि इतने दिनो उसने केवल बच्चो का खेल किया है। केवल कागज के टुकड़ों पर रंग पोता है। इतने दिनो से उसने जो कुछ रुपरेखा कागज़ पर खींची थी वह सब किसी प्रकार भी उसके हृदय को अपनी ओर आक-र्षित न कर सकी। क्योंकि उसके विचार पहले की अपेक्षा बहुत उच्च थे। उच्च वल्कि बहुत उच्चतम होकर चील की भाति आकाश पर मंडलाना चाहते थे। यदि वर्षा ऋतु का सुहाना दिन हो तो क्या कोई शक्ति उसे रोक सकती थी। वह उस समय आवेश में आकर उड़ने की उत्सुकता में असीमित दिशाओ मे उड़ जाता है। एक बार भी फिर कर नहीं देखता। अपनी पहली दशा पर

किसी तरह भी सन्तुष्ट नहीं रहता। नरेन्द्र के हृदय मे रह-रह कर यही विचार आने लगे। भावना और लालसा की झड़ी सी लग गई।

उसने निश्चय कर लिया कि इस बार ऐसा चित्र बनाएगा जिस से उसका नाम अमर हो जाए। वह इस वास्तविकता को सब के दिलो में बिठा देना चाहता था कि उसकी अनुभूति बचपन की अनुभूति नहीं है।

मेज़ पर सिर रखकर नरेन्द्र इसी प्रकार के विचारों का ताना बाना बुनने लगा। वह क्या बनाएगा ? किस विषय पर ? हृदय पर आघात होने से साधारण मनुष्य पर भी असाधारण प्रभाव पड़ता है। भावनाओं के कितने ही पूर्ण और अपूर्ण चित्र उसकी आंखों के सामने से सिनेमा की तस्वीरो की तरह चले गये। परन्तु किसी ने भी दमभर के लिये उसके ध्यान को अपनी ओर न खीचा। सोचते-सोचते संध्या के अंधियारे में शंख की मधुर ध्वनि ने उसको मस्त कर देने वाला गाना सुनाया इस स्वर-लहरी से नरेन्द्र चौंक कर उठ खड़ा हुआ। इसके पश्चात् उसी अन्धकार मे वह चिन्तन-मुद्रा में कमरे के अन्दर पागलों की भाँति टहलने लगा। परन्तु व्यर्थ के कष्ट और निराशा से नरेन्द्र का हृदय-दर्पण मानो चूर चूर होने को था किंतु महान प्रयत्न करने के पश्चात् भी कोई विचार न सूझा।

रात बहुत जा चुकी थी। अमावस्या की अन्धेरी में आकाश परलोक की भाति धुंधला प्रतीत होता था। नरेन्द्र कुछ खोया खोया सा पागलों की भाँति उसी ओर ताकता रहा।

बाहर से रसोइये ने द्वार खटखटा कर कहा—"बाबू!"

चौक कर नरेन्द्र ने पूछा—"कौन है ?'

"बाबू भोजन तैयार है चलिये।"

झुंझलाते हुए नरेन्द्र ने कटुस्वर में कहा–"मुझे तंग न कर। जा मैं इस समय न खाऊंगा।"

इसके पश्चात् उसने स्वयं को चिन्तन सागर में डुबो दिया। दुनियां मे जिस को ख्याति प्राप्त करने का व्यसन लग गया हो उसको चैन कहाँ।

: ४ :

एक सप्ताह बीत गया। इस सप्ताह में नरेन्द्र ने घर से बाहर कदम न निकाला। घर में बैठा सोचता रहता—किसी न किसी मन्त्र से तो साधना की देवी अपनी कला दिखाएगी ही।

इस से पूर्व किसी चित्र के लिए उसे विचार प्राप्ति मे देर न लगती थी, परन्तु इस बार किसी तरह भी उसे कोई बात न सूझी ज्यूं-ज्यूं दिन व्यतीत होते जाते थे वह निराश होता जाता था। केवल यही क्यों ? कई बार तो उसने झुंझला कर सिर के बाल नोच लिये। वह अपने आप को गालियाँ देता था, पृथ्वी पर पेट के बल पड़ कर बच्चों की तरह रोया भी था। परन्तु सब व्यर्थ।

प्रातःकाल नरेन्द्र मौन बैठा था कि मनमोहन बाबू के द्वार-पाल ने आकर उसे एक पत्र दिया। उसने उसे खोलकर देखा। मास्टर जी ने उसमे लिखा था:—

"प्रिय नरेन्द्र,

प्रदर्शनी होने में अब अधिक दिन शेष नहीं है। एक सप्ताह के अन्दर यदि चित्र न आया तो ठीक नहीं। तुम क्या कर रहे हो ? तुम्हारा चित्र कितना बन गया है ?

योगेश बाबू ने चित्र चित्रित कर दिया है। मैने देखा है सुन्दर है। परन्तु मुझे तुम से और भी अच्छे चित्र की आशा है। तुम से अधिक प्रिय मुझे और कोई नहीं। आशीर्वाद देता हूँ, तुम अपने गुरु की लाज रख सको।

इसका ध्यान रखना। इस प्रदर्शनी मे यदि तुम्हारा चित्र अच्छा रहा तो तुम्हारी ख्याति मे कोई बाधा न रहेगी। तुम्हारा परिश्रम सफल हो।"

—मनमोहन

पत्र पढ़ कर नरेन्द्र और भी व्याकुल हुआ। केवल एक सप्ताह शेष है और अभी तक उसके मस्तिष्क में चित्र के विषय मे कोई विचार ही नहीं आया। खेद है अब वह क्या करेगा ?

उसे अपने आत्म-बल पर बहुत विश्वास था—इस समय वह विश्वास भी जाता रहा। इसी तुच्छ शक्ति पर वह दस व्यक्तियो मे सिर उठाए फिरता रहा है ?

उसने सोचा था अमर कलाकार हो जाऊंगा। परन्तु वाह रे दुर्भाग्य ! अपनी अयोग्यता पर नरेन्द्र की आंखों मे आंसू भर आये।

: ५ :

रोगी की रात जैसे आंखो मे निकल जाती है उसकी वह रात इसी तरह समाप्त हुई। नरेंद्र को इसका तनिक भी पता न हुआ। उधर वह कई दिनो से चित्र शाला ही मे सोया था। नरेंद्र के मुख पर जागरण के चिन्ह थे। उसकी पत्नी दौड़ी-दौड़ी आई और शीघ्रता से उसका हाथ पकड़ कर बोली "—अजी बच्चे को क्या हो गया है, आकर देखो तो।"

नरेन्द्र ने कहा—"क्या हुआ ?"

नरेन्द्र की पत्नी लीला ने हांपते हुए कहा—'शायद हैज़ा ! इस प्रकार खड़े न रहो, बच्चा बिल्कुल अचेत पड़ा है।'

बहुत ही अनमने मन से नरेन्द्र शयन कक्ष में प्रविष्ट हुआ।

बच्चा बिस्तर से लगा पड़ा था। पलंग के चारों ओर उस भयानक रोग के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे थे। लाल रंग दो घड़ी में ही पीला हो गया था। सहसा देखने से यही ज्ञात होता था जैसे बच्चा जीवित नहीं। केवल उसके वक्ष के समीप कोई वस्तु धक-धक कर रही थी, और विशेषतः इस क्रिया से ही जीवन के कुछ चिन्ह दृष्टिगोचर होते थे।

बच्चे के सिरहाने नरेन्द्र सिर झुका कर खड़ा हो गया।

लीला ने कहा—"इस तरह खड़े न रहो। जाओ जाकर डाक्टर को बुला लाओ।" मां की आवाज सुन कर बच्चे ने आंखें मली, भर्राई हुई आवाज में बोला—"मां ! ओ माँ !"

"मेरा लाल ! मेरी पूंजी ! क्या कह रहा है ?" कहते-कहते लीला ने दोनों हाथों से बच्चे को अपनी गोद से चिपटा लिया। मां के वक्ष पर सिर रख कर बच्चा फिर पड़ा रहा।

नरेन्द्र के नेत्र सजल हो गये। वह बच्चे की ओर देखता रहा।

लीला ने उपालम्भमय स्वर में कहा—"अभी तक डाक्टर को बुलाने नहीं गये ?"

नरेन्द्र ने दबी आवाज से कहा—"ऐ ....डाक्टर ?"

पति की आवाज़ का अस्वाभाविक स्वर सुनकर लीला ने चकित होते हुए कहा—"क्या ?"

"कुछ नहीं।"

"जाओ डाक्टर को बुला लाओ।'

"अभी जाता हूँ।"

नरेन्द्र घर से बाहर निकला।

घर का द्वार बन्द हुआ। लीला ने आश्चर्य-चकित हो कर सुना कि उसके पति ने बाहर से द्वार की जंजीर खींच ली। सोचती थी—"यह क्या ?"

: ६ :

नरेन्द्र चित्र शाला में प्रविष्ट हो कर एक कुर्सी पर बैठ गया।

दोनो हाथों से मुंह ढाँप कर वह सोचने लगा। उसकी दशा देखकर मालूम होता था कि वह किसी तीव्र आत्मिक पीड़ा से पीड़ित है। चारों ओर गहरे सूनेपन का राज्य था। केवल दीवार पर लगी हुई घड़ी कभी न थकने वाली गति से टक-टक कर रही थी और नरेन्द्र के सीने के अन्दर उसका हृदय मानो उत्तर देता हुआ कह रहा था। धक ! धक। सम्भवतः उसके भयानक संकल्पो से परिचित होकर घडी और उसका हृदय परस्पर काना-फूसी कर रहे थे। सहसा नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ। संज्ञाहीन अवस्था में कहने लगा—"क्या करूं ? ऐसा आदर्श फिर न मिलेगा। परन्तु......................वह तो मेरा पुत्र है।"

वह कहते-कहते रुक गया। मौन होकर सोचने लगा। सहसा मकान के अन्दर से सनसनाते हुए बाण की भाँति 'हाय' की हृदयबेधक आवाज उसके कानो में पहुंची।

"मेरे लाल ! तू कहाँ गया ?"

जिस प्रकार चिल्ला टूट जाने से कमान सीधी हो जाती है, चिन्ता और व्याकुलता से नरेन्द्र ठीक उसी तरह सीधा खड़ा हो

गया। उसके मुख पर लाली का चिह्न तक न था। ।कार कान लगा। कर उसने आवाज सुनी, वह समझ गया कि बच्चा चल बसा।

मन ही मन में बोला—"भगवान! तुम साक्षी हो, मेरा कोई अपराध नहीं।"

इसके बाद वह अपने सिर के बालों को मुट्ठी में लेकर सोचने लगा। जसे कुछ समय पश्चात् ही मनुष्य निद्रा से चौंक उठता है, उसी प्रकार चौक कर जल्दी-जल्दी मेज पर से कागज तूलिका और रंग आदि लेकर वह कमरे से बाहर निकल गया।

शयन-कक्ष के सामने एक खिडकी के समीप आकर वह अकचका कर खड़ा हो गया। कुछ सुनाई देता है क्या? नहीं सब खामोश है। उस खिड़की से कमरे का आंतरिक भाग दिखाई पड़ रहा था। झॉक कर भय से थर-थर कांपते हुए उसने देखा तो उस से उसके सारे शरीर मे कॉटे से चुभ गये। बिस्तर उलट-पुलट हो रहा था। पुत्र से रिक्त गोद किये मॉ वहीं पडी हुई तड़प रही थी।

और इसके अतिरिक्त ·……मॉ कमरे मे पृथ्वी पर लोटते हुए, बच्चे के मृत शरीर को दोनों हाथो से वक्ष स्थल के साथ चिपटाए, बाल बिखेरे, नेत्र विस्फारित किये, बच्चे के निर्जीव होठो को बार-बार चूम रही थी।

नरेंद्र की दोनो ऑखो मे जैसे किसी ने दो सलाखें चुभो दी हो। उसने होंठ चबा कर कठिनता से स्वयं को सभाला और इसके साथ ही कागज पर पहली रेखा खींची। उसके सामने कमरे के अंदर वही भयानक दृश्य उपस्थित था। संभवतः संसार के किसी अन्य चित्रकार ने ऐसा दृश्य सम्मुख रख कर तूलिका न उठाई होगी।

देखने मे नरेंद्र के शरीर में कोई गति न थी, परन्तु उसके

हृदय में कितनी वेदना थी ? उसे कौन समझ सकता है, वह तो पिता था।

नरेंद्र जल्दी-जल्दी चित्र बनाने लगा। जीवन भर चित्र बनाने मे इतनी जल्दी उसने कभी न की। उसकी उंगलियां किसी अज्ञात शक्ति से आज अपूर्व शक्ति प्राप्त कर चुकी थी। रूप-रेखा बनाते हुए उसने सुना—"बेटा ओ बेटा! बाते करो बातें करो, जरा एक बार देख तो लो ?'

नरेंद्र ने अस्फुट स्वर में कहा—"उफ, यह असहीनय है।" और उसके हाथ से तूलिका छूट कर पृथ्वी पर गिर पडी।

किंतु उसी समय तूलिका उठा कर वह पुनः चित्र बनाने लगा। रह-रह कर लीला क्रन्दन-रुदन कानों मे पहुँच कर हृदय को छेड़ता और रक्त की गति को मन्द कर रहा था। उसके होंठ स्थिर होकर उसकी तूलिका की गति को रोके देते थे!

इसी प्रकार पल पर पल बीतने लगे।

मुख्य द्वार से अन्दर आने के लिये नौकरो ने शोर मचाना शुरु कर दिया था, परन्तु नरेन्द्र मानो इस समय संसार और संसार की आवाज की ओर से बहरा हो चुका था।

वह कुछ भी न सुन चुका। इस समय वह एक बार कमरे की ओर और एक बार चित्र की ओर देखता था, एक बार रंग मे तूलिका डुबोता और फिर कागज़ पर चलाता था।

वह पिता था, परंतु कमरे के अन्दर पत्नी के हृदय से लिपटे हुए मृत बच्चे की याद भी वह धीरे-धीरे भूलता जा रहा था।

सहसा लीला ने उसे देख लिया। दौड़ती हुई खिड़की के समीप आकर दुखित स्वर मे बोली—"क्या डाक्टर को बुलाया ? जरा एक बार आकर देख तो लेते कि मेरा लाल जीवित है या

नहीं........यह क्या ? चित्र बना रहे हो ?"

चौक कर नरेन्द्र ने लीला की ओर देखा। वह लडखड़ा कर गिर रही थी।

बाहर से द्वार खटखटाने और बार-बार चिल्लाने पर भी जब कपाट न खुले, तो रसोइया और नौकर दोनो डर गये। वह अपना काम समाप्त करके प्रायः संध्या-समय घर चले जाते थे और प्रातः काल काम करने आ जाते थे। प्रति दिन लीला या नरेन्द्र दोनो मे से कोई न कोई द्वार खोल देते थे, आज इतना चिल्लाने और खटखटाने पर भी द्वार न खुला। इधर रह-रह कर लीला की क्रन्दन-ध्वनि भी कानो में आ रही थी।

उन लोगो ने मुहल्ले के कुछ व्यक्तियो को बुलाया। अन्त मे सब ने सलाह करके द्वार तोड़ डाला।

सब आश्चर्य-चकित होकर मकान मे घुसे। जीने से चढ़ कर देखा कि दीवार का सहारा लिये, दोनों हाथ जंघाओं पर रखे, नरेन्द्र सिर नीचा किये हुए बैठा है।

उनके पॉव की आहट से नरेन्द्र ने चौंक कर मुंह उठाया उसके नेत्र रक्त की भाति लाल थे। थोड़ी देर पश्चात् वह ठहका मार कर हॅसने लगा और सामने लगे चित्र की ओर ॲगली दिखा कर बोल उठा—"डाक्टर ! डाक्टर ! मैं अमर हो गया।"

: ७ :

दिन बीतते गये, प्रदर्शनी आरम्भ हो गई।

प्रदर्शनी मे देखने की कितनी ही वस्तुएं थीं, परन्तु दर्शक विशेषतः एक ही चित्र पर झुके पड़ते थे। चित्र छोटा सा था

और अधूरा भी, उसका नाम था "अन्तिम प्यार।"

चित्र में चित्रित किया हुआ था कि एक माँ बच्चे का मृत शरीर हृदय से लगाये हुए अपने दिल के टुकड़े के चंदा से मुख को बार-बार चूम रही है।

शोक और चिन्ता में डूबी हुई माँ के मुख, नेत्र और शरीर में चित्रकार की तूलिका ने एक ऐसा सूक्ष्म और दर्द-नाक चित्र चित्रित किया कि जो देखता था उसी की आँखों से आँसू निकल पड़ते थे। चित्र की रेखाओं में इतनी अधिक सूक्ष्मता से दर्द भरा जा सकता है, यह बात इससे पहले किसी के ध्यान में न आई थी।

इस दर्शक समूह में कितने ही चित्रकार थे। उन में से एक ने कहा—"देखिये योगेश बाबू आप क्या कहते है।"

योगेश बाबू उस समय मौन धारण किये चित्र की ओर देख रहे थे, सहसा प्रश्न सुनकर एक आँख बन्द करके बोले—"यदि मुझे पहले से ज्ञात होता तो मैं नरेन्द्र को अपना गुरु बनाता।"

दर्शको ने धन्यवाद, साधुवाद, और वाह-वाही की झड़ी लगा दी। परन्तु किसी को भी यह मालूम न हुआ कि उस सज्जन पुरुष का मूल्य क्या है? जिसने इस चित्र को चित्रित किया है।

किस प्रकार चित्रकार ने स्वयं को धूलि मे मिलाकर रक्त से इस चित्र को रंगा है। उसकी यह दशा किसी को भी ज्ञात न हो सकी।

धन की भेंट

वृन्दावन कुन्दू तीव्र क्रोधावेश मे अपने पिता के पास आकर कहने लगा "—मै इसी समय आप से विदा होना चाहता हूँ"

उसके पिता जगन्नाथ कुन्दू ने घृणा प्रकट करते हुए कहा— "अभागे। कृतघ्न ! मैने जो रुपया तेरे खाने कपड़े पर खर्च किया है, जिस समय तू वह चुका दे फिर ऐसी धमकी देना।"

जिस प्रकार का भोजन जगन्नाथ के घर मिला करता था उस पर कुछ अधिक व्यय न होता था। भारत के प्राचीन ऋषि मितव्ययता के लिये ऐसी वस्तुओ का प्रबन्ध कर लिया करते थे। जगन्नाथ के व्यवहार से ज्ञात होता था कि वह इस विषय मे उन ऋषियो ही के निर्मित आदर्शो पर चलना पसन्द करता था। यद्यपि वह पूर्ण रूप से इस आदर्श को निबाहने मे असमर्थ था, तो इसका कारण कुछ तो यह समझा जा सकता है कि जिस समाज मे उसका रहन-सहन था वह अपने प्राचीन आदर्शो से बहुत पतित हो चुका था, और कुछ यह कि उसकी आत्मा को शरीर के साथ मिलाए रखने के विषय मे प्रकृति की उत्तेजना तीव्र और आयुक्ति संगत थी।

जब तक वृन्दावन कुंवारा था, उसका निर्वाह जैसे-तैसे चलता रहा किन्तु विवाह के पश्चात् उसने सीमा से बाहर इस उत्तम

और सुन्दर आदर्श को, जो उसके महामना पिता ने निर्मित कर रखा था, त्याग करना शुरू कर दिया। ऐसा ज्ञात होता था कि सांसारिक सुख ऐश्वर्य के सम्बन्ध मे उसके विचार आत्मिकता से शारीरिकता की ओर परिवर्तित हो रहे हैं और खाने पीने की न्यूनता से उसे भूख; प्यास, सर्दी गर्मी आदि जो कष्ट सम्मुख आते हैं, उसने उन्हे सहना पसन्द न करके संसार के साधारण व्यक्तियो के आचरण का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया।

जब से वृन्दावन ने अपने पिता के निर्मित उच्च आदर्श को त्यागा तभी से पिता और पुत्र मे कलह आरम्भ हो गई। इस कलह ने चरम सीमा का रूप उस समय-धारण किया, जब वृन्दावन की पत्नी अधिक रुग्न हुई और उसकी चिकित्सा के लिये एक कविराज (वैद्य) बुलाया गया। यहाँ तक भी व्यवहार क्षमा करने योग्य था, किन्तु जब वैद्यराज ने रोगी के लिए एक अधिक मूल्य की औषधि का निर्णय किया, तो जगन्नाथ ने समझ लिया। कि वैद्यराज अयोग्य है। वैद्यक के नियमो से बिल्कुल अपरिचित। बस उसने उसी समय उसको मकान से बाहर निकलवा दिया। वृन्दावन ने पहले तो पिता से काफी अनुनय विनय की कि औषधि जारी रहे—फिर झगड़ा भी किया, परन्तु पिता के कान पर जूं तक न रेंगी अन्त मे जब पत्नी स्वर्ग सिधार गई तो वृन्दावन का क्रोध अधिक बढ़ गया और उसने अपने पिता को उसका प्राण-घातक ठहराया किया।

जगन्नाथ ने स्वभावानुसार उसको समझाने का बहुत प्रयत्न किया और कहा—"तुम कैसी ना समझी की बाते करते हो क्या लोग विभिन्न प्रकार की औषधी खाकर नहीं मरते यदि मूल्यवान औषधियां ही मनुष्य को जीवित रख सकती तो बड़े २ राजा महाराजा क्यो मरते ? इस से पहिले तुम्हारी माँ और दादी मर

चुकी है, यह मर गई तो क्या हुआ। समय आने पर प्रत्येक व्यक्ति को कूच करना है।"

वृन्दावन यदि इस प्रकार दुःखो और सचेत तथा वास्तविक परिणाम पर पहुंचने मे योग्य न होता, तो संभव था कि वह इन बातों से कुछ सॉत्वना प्राप्त कर लेता। इस से पहले मरने के समय उसकी माँ और दादी ने औषधि न पा थी और औषधि सेवन न करने की यह रीति बहुत पहिले से इस खान्दान मे चली आती है। नई पौद का चरित्र इतना बिगड़ चुका है कि वह पुराने ढंग पर मरना भो पसन्द नही करती।

जिस युग की चर्चा हम कर रहे हैं, उन दिनो अंग्रेज भारत मे नये-नये आये थे। किन्तु उस समय भी इस देश के बड़े बूढ़े अपनी औलाद के स्वभाव विरुद्ध ढंग पर आश्चर्य और विकलता प्रकट किया करते थे। और अन्त मे जब उनकी एक भी न चलती तो अपने मुहं से लगे हुए हुक्कों से सॉत्वना प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे।

मतलब यह है कि जिस समय मामला चरम सीमा को पहुँच गया तो वृन्दावन से न रहा गया और उसने आवेश तथा विकलता के साथ अपने पिता से कहा—"मै जाता हूँ।"

पिता ने उसे दृढ़ देख कर उसी समय आज्ञा दे दी।

और घोषणा करते हुए कह दिया—"कि चाहे देवता मेरे इस ढग को गौ हत्या के समान ही क्यों न समझे, मैं शपथ खाकर कहता हूं तुम्हे अपनी धन सम्पत्ति से एक कौड़ी भी न दूंगा।"

और यदि मै तुम्हारी एक पाई तक को भी हाथ लगाऊं तो उस व्यक्ति से भी नीच होऊँगा जो अपनी मां को बुरे भाव से देखता है।

गांव के निवासियों ने अपने जैसे विचारों के, लम्बे चौड़े वाद विवाद के पश्चात् उस छोटे से परिवर्तन भरे झगड़े को सन्तोष पूर्वक देखा। जगन्नाथ ने चूंकि अपने बेटे को अपनी सम्पति से वंचित कर दिया था, अतः प्रत्येक व्यक्ति उसे साँत्वना देने का प्रयत्न करता था। वे सब इस विषय मे सहमत थे कि केवल पत्नी की खातिर पिता के साथ झगड़ा करने का दृश्य इस गये गुजरे युग मे ही देखा जा सकता है। इस के सम्बन्ध में वह स्वयं जो कारण बताते थे वह भी बहुत असंगत थे। वे कहते थे कि यदि किसी की पत्नी मर जाए तो बड़ी सरलता से दूसरी प्राप्त कर सकता है, पिता मर जाए तो संसार भर के धन-ऐश्वर्य के बदले मे भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता।

इस बात मे सन्देह नहीं कि उनका उपदेश हर प्रकार से ठीक था, किन्तु हमे सन्देह है कि दूसरा पिता प्राप्त करने की पीड़ा उस पथ-भ्रष्ट बेटे को कहाँ तक प्रभावित कर सकती थी। इसके विरुद्ध हमारा विचार यह है कि ऐसा अवसर आता तो वह उसे ईश्वरीय अनुकंपा मे सम्मिलित समझता।

वृन्दावन के अलग होने का दुख उसके पिता जगन्नाथ को तनिक भी अनुभव न हुआ। इसके कुछ विशेष कारण थे। एक तो यह कि उसके चले जाने से घर का खर्च कम हो गया, दूसरे हृदय से एक भारी चिन्ता दूर हो गई, हर समय उसे इस बात का भय रहता था कि मेरा बेटा मुझे विष देकर न मार दे। जब कभी वह अपना थोड़ा सा भोजन करने बैठता तो यही विचार उसे विकल कर देता था कि इसमे विष न मिला हुआ हो। यह चिन्ता किसी सीमा तक वृन्दावन की पत्नी के स्वर्गवास पर दूर हो गई थी, किन्तु अब वह बिल्कुल ही न रही।

किन्तु जिस प्रकार घने अन्धियारे बादलों में चमकीली बिजली, और बड़े तुफानी समुद्र मे भी बहू मूल्य रत्न विद्यमान रहते है, उसी प्रकार बूढ़े जगन्नाथ के कठोर हृदय मे भी एक निर्बलता शेष थी। बृन्दावन जाते समय अपने साथ अपने चार वर्षीय पुत्र गोकुलचन्द को भी ले गया था। चूंकि उसकी खुराक और वस्त्रो का खर्च बहुत न्यून था इस लिये जगन्नाथ को उससे बहुत प्रेम था। जाते समय जब वृन्दावन उसे अपने साथ ले गया तो सब से पहले दुख और पछतावे की अपेक्षा उसने अपने मन मे हिसाब करना शुरू किया। कि इन दोनो के चले जाने से खर्च मे कितनी कमी हो जाएगी। इस बचत की वार्षिक रकम कहां तक पहुंचेगी, और इस बचत को यदि किसी रकम का सूद समझा जाए तो उसका मूलधन कितना हो सकता है ?

जब तक गोकुलचन्द घर मे था वह अपने चॉचल्य से जगन्नाथ का ध्यान अपनी ओर आकर्षित रखता था। परन्तु उसके चले जाने पर कुछ दिनों मे ही बूढ़े को ऐसा अनुभव होने लगा कि घर काटने का दौड़ता है। इससे पहले जिस समय जगन्नाथ पूजा पाठ मे तल्लीन होता तो गोकुलचन्द उसे छेड़ा करता था। भोजन करते समय उसके आगे से रोटी या चावल उठा कर भाग जाता और स्वयं खा लेता। और वह जब आय व्यय लिखने बैठता तो उसकी दवात लेकर दौड़ जाता, किंतु अब उसके चाले जाने पर ये सब बाते भी दूर हो गई। जीवन मे प्रतिदिन का क्रिया कलाप उसे भार अनुभव होने लगा। उसे ऐसा मालूम होता था कि इस प्रकार का विश्राम भविष्य के संसार में ही सहन किया जा सकता है। जब कभी वह गोकुल की चंचलता को स्मरण करता तो रजाइयों मे उसके हाथों के

छिद्रों या दरी पर कलम दवात से उसके बनाए हुए भद्दे चित्र देखता "और उसका हृदय कष्ट के मारे बैठ जाता। जगन्नाथ को अपने सोने के कमरे में एक कोने के अन्दर पड़ी हुई गोकुल की धोती के टुकड़े दिखाई पड़े, तो सहसा उसके नेत्रों से अश्रु बह निकले। यही वह धोती थी जिसे गोकुल ने दो वर्ष के अल्प समय मे फाड़ दिया था, तो जगन्नाथ ने उसे झिड़का और बुरा भला कहा था। किन्तु अब उसने इन टुकड़ों को उठा कर बड़ी सावधानी से अपने संदूक मे रख लिया और इस बात की शपथ खाली कि यदि गोकुल उसके जीते जी फिर कभी वापस आ गया तो चाहे वह हर वर्ष एक धोती फाड़े, वह उस से कभी रुष्ट न होगा।

परन्तु गोकुल को न वापस आना था, न आया। गरीब जगन्नाथ दिन प्रतिदिन वृद्ध होता जा रहा था और उसको खाली घर अधिक से अधिक भयावना दिखाई पड़ता था।

अन्त में दशा यहाँ तक पहुंची कि वह सन्तोष से घर में बैठ भी न सकता। मध्यान्ह जब गाँव के सब लोग अपने-अपने घरो मे सोए होते तो जगन्नाथ नारियल हाथ में लिये गलियों मे घूमता दिखाई देता। गाँव के लड़के जब कभी उसे अपनी ओर आता देखते तो खेल छोड़ कर दूर स्थान पर जा खड़े होते और इस प्रकार की पद्यपंक्ति गाने लगते जिन मे एक स्थानीय कवि ने वृद्ध जगन्नाथ की मितव्ययी स्वभाव की प्रशंसा की थी। कोई व्यक्ति भय के मारे उसका वास्तविक नाम इस डर से जबान पर न लाता था कि कहीं उसे उस रोज अन्न जल प्राप्त न हो। अतः लोगों ने उसके अनेक प्रकार के नाम रख छोड़े थे। वृद्ध उसे जगन्नाथ कहा करते थे, परंतु मालूम नहीं छोटे लड़के उसे चिड़ियल क्यो कहते थे। सम्भव है इसका कारण

यह हो कि उस का चर्म सूखी और शरीर रक्त हीन दिखाई देता था। इन्हीं कारणो से वह प्रेत आत्माओं के समान समझा जाता था।

: २ :

एक दिन मध्याह्न समय जब जगन्नाथ स्वभावानुसार गाँव की गलियों में आम के छतनारे वृक्षों के नीचे अपना नारियल हाथ में लिए फिर रहा था। उसने देखा कि एक लड़का जो देखने मे अपरिचित मालूम होता था किन्तु गाँव के लड़को का मुखिया बना हुआ उन्हें कोई नई शरारत समझा रहा है। उसके महान चरित्र और उसकी कुशाग्र बुद्धि से प्रभावित होकर सब लड़कों ने इस बात का नियम कर लिया था कि हर काम मे उसकी आज्ञानुसार आचरण करेंगे। दूसरे लड़कों की भाँति वह वृद्ध जगन्नाथ को अपनी ओर आता देख कर भय से भागा नहीं, बल्कि उसके समीप जाकर चादर झाड़ने लगा। उसी समय उसमे से एक जीवित छिपकली निकल कर वृद्ध के शरीर पर गिरी और उसकी पीठ की ओर से नीचे उतर कर वन की ओर भाग गई। भय से वृद्ध के हाथ पाँव काँपने लगे। यह देख कर सब लड़के बहुत प्रसन्न हुए और प्रसन्नता से उच्च स्वर मे घोष करने लगे। वृद्ध जगन्नाथ बड़बड़ाता और गालियाँ देता हुआ बहुत दूर निकल गया। किन्तु वह दुपट्टा जो प्रायः उसके कन्धों पर पड़ा रहा करता था, सहसा गायब हो गया और दूसरे ही क्षण उस अपरिचित लड़के के सिर पर बन्धी हुई पगड़ी के रूप में दिखाई दे रहा था।

लड़के की ओर से इस प्रकार की चेष्टा देख कर जगन्नाथ

पहले तो कुछ चिन्तित हुआ, फिर वह गाँव की प्रति दिन की कठोरता को इस प्रकार पराजित होते देख कर प्रसन्न भी हुआ। काफी दिनों से लड़के उसकी छाया ही देख कर दूर भाग जाया करते थे और उसे उन से बोलने तथा बातचीत करने का अवसर ही न मिलता था। अपरिचित लड़का इस शरारत के पश्चात् दूर भाग गया था, किन्तु बहुत से वचन और सांत्वना देने के पश्चात् अन्त मे वह उस वृद्ध के समीप आया। फिर दोनों मे निम्न बाते होने लगी।

"बेटा तुम्हारा नाम क्या है?"

"नितईपाल।"

"घर कहाँ है?"

"मैं नही बताऊंगा।"

"क्यो नहीं बतलाओगे?"

"मैं घर से भाग कर आया हूं।"

"भागे क्यों थे?"

"मेरा पिता मुझे स्कूल जाने को कहता था।"

जगन्नाथ के हृदय मे विचार आया ऐसे होनहार लड़के को स्कूल भेजना कैसी व्यर्थ की बात है। वह कैसा लड़के के भविष्य के परिणाम की ओर से आँखे मीचे रहने वाला पिता होगा, जो इसे स्कूल भेजना चाहता है।

थोड़ी देर पश्चात् वह कहने लगा—"अच्छा तुम मेरे घर रहना पसन्द करोगे?"

लड़के ने उत्तर दिया—"क्यो नहीं।" उसी दिन से वह लड़का उसके घर मे रहने लगा। उसे घर मे प्रवेश करते हुए इतना भी भय न हुआ, जितना अन्धेरे में किसी वृक्ष के नीचे जाने से हो सकता है। इतना ही नही, बल्कि उसने अपने वस्त्र

और भोजन के विषय में ऐसे निर्भयता पूर्ण ढंग पर प्रश्न करने आरम्भ किये जैसे वह उस घर मे वर्षो से रहता हुआ अपना खर्च दे चुका हो। यदि कोई वस्तु उसके इच्छानुसार न होती थी तो वह जगन्नाथ से झगड़ा आरम्भ कर देता था। जगन्नाथ अपने बेटे को तो डरा धमका भी लेता था, परन्तु उसे वश में लाना सहज न था। उसे उसकी हर एक बात माननी पड़ती थी।

गांव के लोग आश्चर्य में थे कि जगन्नाथ ने नितईपाल को क्यों इस प्रकार सिर पर चढ़ा रखा है। यह सर्व विदित था कि वृद्ध अब कुछ दिन नहीं तो कुछ सप्ताह का अतिथि है। और वह इस बात को सोच कर बहुत दुखित होते थे कि उसके स्वर्ग सिधारने पर उसकी सम्पत्ति का अधिकारी यही लड़का होगा।' वे सब इस बात पर लड़के से बहुत ईर्ष्या करने लगे थे। उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया कि उसे अवश्य हानि पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे। परन्तु वृद्ध उसकी ऐसी निगरानी रखता था जैसे वह उसकी पसली की हड्डी हो।

कभी-कभी लड़का धमकी देकर कहता–'मै घर चला जाऊंगा,' ऐसे अवसर पर वृद्ध लोभ-लालच का जाल बिछाकर कहता—"मै अपनी सारी सम्पत्ति तुम को ही दे दूंगा।" लड़का हर प्रकार से कम आयु का था, तब भी इस वचन के महत्व को खूब समझता था।

गाँव वालो से और कुछ न हो सका तो उन्होंने उस लड़के के बाप के सम्बन्ध मे जाँच आरम्भ की। उनको यह सोच कर बहुत दुख होता था कि उसके माता-पिता उसकी याद में दुखी होंगे। लड़का बड़ा चंचल है, जो उन्हे इस प्रकार छोड़ कर भाग आया। वे इसे हजार-हजार गालियाँ देते होंगे। किन्तु यह सब बाते वे जिस आवेश मे करते थे इस से स्पष्ट प्रतीत होता था कि

वह न्याय नहीं, बल्कि ईर्ष्या से काम ले रहे हैं।

एक दिन वृद्ध को किसी बटोही की जबानी ज्ञात हुआ कि दामोदर पाल अपने बेटे की खोज में समीप के गाँवों और कस्बों में फिर रहा है, और कुछ ही समय मे वह इस गाँव में आया चाहता है। निताइ ने जब यह बात सुनी तो सहज भाव से उस के हृदय के प्रेम मे आवेश आया। वह उद्विग्नता की दशा मे धन सम्पत्ति छोड़कर अपने पिता के पास जाने को तैयार हो गया। जगन्नाथ उसे रोकने के लिये प्रत्येक संभव रीति से प्रयत्न करता था। अतः उसने कहा—"तुम अपने पिता के पास जाओगे तो वह तुम्हें पीटेगा, मै तुम्हे एक ऐसे स्थान पर छुपा दूंगा कि किसी को भी तुम्हारा पता न मिल सके; यहां तक कि गाँव वाले भी मालूम न कर सकेंगे।"

इस बात से लड़के के हृदय में आश्चर्य उत्पन्न हुआ और वह कहने लगा—"बाबा! मुझे कहाँ छुपाओगे? भला वह स्थान तो मुझे दिखा दो।"

जगन्नाथ ने उत्तर दिया—"यदि वह स्थान मै इस समय तुम्हे दिखा दूं तो लोगों को खबर हो जाएगी, रात हो जाने दो।" बच्चो मे आश्चर्यजनक स्थान देखने की उत्कट लालसा होती है, निताई उसी तरह यह बात सुन कर प्रसन्न हुआ। उसने अपने हृदय मे विचारा कि जब मेरे पिता मेरी खोज करने के पश्चात् वापस चले जाएंगे तो मै दौड़ लगा कर लड़को के साथ आँख-मिचौनी खेला करूंगा और कोई मालूम न कर सकेगा कि मै कहाँ छुपा हूँ—वास्तव मे उस समय बड़ा आनन्द आएगा। पिता जी सम्पूर्ण गाँव छान मारेंगे और मुझे कहीं न पा सकेंगे, बड़ी दिल्लगी होगी।

मध्यान्ह के समय जगन्नाथ लड़के को कुछ समय के लिए

मकान में बन्द करके कहीं चला गया। उसके वापस आने पर नितई ने उससे इतने प्रश्न किये कि वह परेशान हो गया।

अन्त में जब रात हुई तो नितई कहने लगा—"बाबा अब तो वह स्थान मुझ को दिखा दो।"

जगन्नाथ ने उत्तर दिया—"अभी रात नहीं हुई।"

इसके कुछ समय पश्चात् लड़के ने फिर कहा—"बाबा अब रात बहुत हो गई है, अब तो चलो।"

जगन्नाथ ने धीरे से कहा—"अभी गांव के लोग सोए नहीं हैं।"

नितई फिर एक क्षण के लिये रुका और बोला—"बाबा! इस समय तो सब लोग सो गये हैं, आओ अब चलें।

रात बहुत जा चुकी थी। गरीब लड़का इतनी देर तक कभी न जागा था, इस लिए उसको जागे रहने में बड़ी कठिनाई पड़ रही थी। अन्त मे आधी रात के समय जगन्नाथ लड़के की बाँह पकड़ कर स्वप्निल गाँव की अन्धेरी गलियों से रास्ता टटोलता बाहर निकला सब दिशायें सूनी थी चारों ओर सूना-पन था, कभी-कभी कोई कुत्ता भौंकने लगता तो और कुत्ते भी उसके साथ मिलकर भौंकना आरम्भ कर देते इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं उसके पांव की चाप से कोई पक्षी वृक्ष की टहनी से पंख फड़फड़ाता और उड़ जाता था। नितई भय से कांप रहा था किन्तु जगन्नाथ ने उसका हाथ दृढ़ता से पकड़ा हुआ था।

कई खेतों में से होकर अन्त मे ये लोग जंगल में प्रविष्ट हुए। यहां एक जीर्ण मन्दिर खड़ा हुआ था। जिसमे किसी भी देवता की मूर्ति दिखाई न पड़ती थी।

नितई ने उसे देखकर निराशा भरे स्वर में कहा—"बस यही स्थान था?"

यह स्थान उसकी कल्पना से सर्वथा भिन्न था। क्यों कि उसमें कोई आश्चर्य विद्यमान न था। जब से वह घर से भागा था अनेक बार ऐसे खंडहर-मन्दिरों में राते व्यतीत कर चुका था। इतना होने पर भी आंख-मिचौली खेलने के लिए यह स्थान सुन्दर था अर्थात् ऐसा कि उसके साथ खेलने वाले लड़के वहाँ उसकी खोज न कर सकते थे।

जगन्नाथ ने फर्श के बीच से एक पत्थर की सिल उठाई। उसके नीचे आश्चर्य चकित लड़के को एक तहखाना दिखाई दिया। जिसमे एक धीमा सा दीप जल रहा था। भय और आश्चर्य दोनो बाते उसके हृदय पर जमी हुई थी। अन्दर एक बॉस की सीढ़ी खड़ी थी। जगन्नाथ नीचे उतरा, और नितई भी उसके पीछे-हो लिया।

नीचे उतर कर लड़के ने इधर-उधर देखा तो उसे चारो ओर पीतल के टोकने पड़े हुए दिखाई दिये। उसके मध्य मे एक आसन बिछा हुआ था और सामने थोड़ा सिन्दूर घिसा हुआ चन्दन, कुछ जंगली फूल और पूजा की शेष सामग्री रखी हुई थी। लड़के ने अपनी जिज्ञासा पूर्ति के लिए उन टोकनो में से कुछ के अन्दर हाथ डाला, और जब बाहर हाथ निकालकर देखा तो मालूम हुआ कि उनमे रुपये और सोने की मोहरे भरी हुई हैं। इतने में वृद्ध जगन्नाथ ने नितई से कहा—"नितई मैंने तुम से कहा था न कि मै अपनी सारी धन सम्पत्ति तुम्हें दे दूंगा, मेरे पास कोई बहुत अधिक रुपये नहीं है, किंतु जो कुछ भी है वह इन पीतल के टोकनों में भरा हुआ है और यह सब मैं आज तुम्हारे हवाले करना चाहता हूं।"

नितई प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा और बोला—"सब! तुम इनमें से एक रुपया भी अपने पास न रखोगे?"

वृद्ध ने उत्तर दिया—"यदि मैं इसमें से कुछ लूं तो भगवान करे मेरा वह हाथ कोढ़ी हो जाए—किंतु यह सम्पत्ति मै तुम्हें एक शर्त पर देता हूं। यदि कभी मेरा पोता गोकुल चन्द या उस का भी बेटा, पोता या पर पोता या उसकी औलाद में से कोई व्यक्ति भी इस रास्ते से होकर जाए तो तुम्हारे लिए अनिवार्य होगा कि यह सारी सम्पत्ति, एक-एक रुपया और सोने की मोहरें तक उसको सौंप दो।"

लड़के ने थोड़ा ध्यान से सोचा और निश्चय के साथ विचारा कि वृद्ध पागल हो गया है। फिर कहने लगा—"बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही करूंगा।"

जगन्नाथ ने कहा—"बस तो इस स्थान पर बैठ जाओ।"

'क्यो ?'

'तुम्हारी पूजा की जाएगी।'

लड़के ने चकित होकर पूछा—'पूजा किस लिये ?'

वृद्ध ने उत्तर दिया—'यही रीति है।'

लड़का उछल कर तुरंत आसन पर बैठ गया। वृद्ध जगन्नाथ ने उसके माथे पर चंदन लगाया, भृकुटियो के मध्य सिंदूर की बिंदी लगा दी, जंगली पुष्पों का हार उसके गले में डाला और कुछ मंत्र उच्चारण करने लगा।

बेचारा नितई देवता की भाँति आसन पर बैठा-बैठा उकता गया, क्यों कि उसकी पल्कें नींद से भारी हो रही थीं। आखिर को उसने घबड़ा कर कहा—'बाबा !'

परन्तु जगन्नाथ उत्तर दिये बिना ही मंत्र पढ़ता रहा।

आखिर को मंत्रों का सिलसिला समाप्त हुआ और जगन्नाथ ने बड़ी कठिनाई से एक टोकने को खैंच कर लड़के के सम्मुख रखा और ये शब्द विवशता से उसके मुख से कहलवाए—'मैं

सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस सारे कोष को गोकुल चंद कुंदू या वृंदावन कुंदू वल्द जगन्नाथ कुंदू या गोकुल चंद कुंदू के बेटे, पोते पड़पोते; या उसकी औलाद के किसी व्यक्ति को जो इसका वास्तविक और योग्य उत्तराधिकारी होगा, दे दूंगा।'

अनेक बार इन शब्दों के कहने मे भोले लड़के की चेतना जाती रही और कंठ सूखने लगा।

जैसे २ यह रस्म समाप्त हुई तो गुफा की वायु दीपक के धुंवे और उन दोनों के साँस के कारण बुरी मालूम होने लगी। नितई को अपना कंठ मिट्टी की भाँति सूखा और हाथ पाँव जलते हुए अनुभव हो रहे थे। बेचारे का दम घुटा जा रहा था।

दीपक धीरे २ मद्धम होता गया, यहाँ तक की एक अन्तिम झोंका खाकर बुझ गया। इसके पश्चात् अन्धेरा। नितई को ऐसा लगा कि वृद्ध जल्दी २ सीढ़ी के ऊपर चढ़ रहा है। उसने घबरा कर पूछा—'बाबा तुम कहाँ जा रहे हो ?'

जगन्नाथ ने निरंतर ऊपर की ओर चढ़ते हुए उत्तर दिया—मैं अब जाता हूं, तुम यहाँ रहो, यहाँ तुम्हे कोई ढूंढ न सकेगा। वृन्दावन के बेटे और जगन्नाथ के पोते गोकुलचन्द का नाम याद रखना।'

इसके पश्चात् उसने ऊपर जाकर सीढ़ी खींच ली। लड़के ने अवरुद्ध और दयनीय स्वर मे कहा—'मै अब अपने पिता के पास जाना चाहता हूँ, यहाँ मुझे भय लगता है।'

जगन्नाथ ने उसकी परवाह न करते हुए गुफा के मुंह पर पत्थर की सिला रखदी। इसके पश्चात् दोनो जंघाओं को मोड़ कर झुक कर अपना कान पत्थर के समीप लगा कर सुनने लगा।

अन्दर से आवाज आई "बाबा जी ! बाबा जी !" फिर किसी भारी वस्तु के फ़र्श पर गिरने की आवाज सुनाई दी और इसके बाद निस्तब्धता छा गई।

इस प्रकार अपनी सम्पत्ति उसको सौंप कर वृद्ध जगन्नाथ ने जल्दी-जल्दी पत्थर के ऊपर मिट्टी डालनी आरम्भ कर दी। उस पर उसने टूटी-फूटी ईंटे और चूना रख दिया और फिर मिट्टी बिछा कर उसमें जंगली घास और बूटियो की जड़ गाड़ दी।

रात संभवतः समाप्त हो चुकी थी। परन्तु वह उस स्थान से हटकर घर न जा सका, रह-रहकर अपना कान पृथ्वी पर लगाता और अवाज सुनने का प्रत्यन करता था। ऐसा मालूम होता था कि अब भी उस गुफा के अन्दर या पृथ्वी की अथाह गहराइयों मे से एक दर्दनाक रोने की सी आवाज सुनाई दे रही है। उसे ऐसा भान होता था कि रात मे आकाश पर केवल वही एक आवाज छाई हुई है और ससार के सब व्यक्ति उस आवाज से जाग कर बिस्तरों में बैठे उसे सुनने का प्रयत्न कर रहे है।...

पागल वृद्ध आवेश में आकर और अधिक मिट्टी डाले जाता था। वह चाहता था कि उस आवाज को दबा दे। किंतु इस पर भी वह रह रहकर उसके कान मे आ रही थी—"बाबा जी ! हाय बाबा जी !"

उसने पूरी शक्ति पृथ्वी पर पॉव मारकर चिल्लाते हुए कहा—"चुप रहो, लोग तुम्हारी आवाज सुन लेगे।"

फिर भी उसे मालूम हुआ कि "हाय बाबा जी ! हाय बापू !" की आवाजे रह-रह कर सुनाई दे रही हैं।

इतने मे सूर्य उदय हुआ और जगन्नाथ कुन्दू मंदिर को छोड़कर खेतों की ओर आ गया।

वहाँ भी किसी ने उसके पीछे से आवाज दी—"बापू !" घबराहट की दशा में जगन्नाथ ने पीछे फिर कर देखा तो उसका पुत्र वृन्दावन था।

वृन्दावन कहने लगा—"मुझे ज्ञात हुआ है कि मेरा बेटा आपके घर मे छुपा हुआ है, उसे मुझे दे दो।"

यह सुनकर वृद्ध के नेत्र विस्तृत हो गये, मुंह चौड़ा हो गया, और उसने मुड़कर पूछा—"क्या कहा ? तुम्हारा बेटा ?"

वृन्दावन ने उत्तर दिया—"हाँ मेरा बेटा गोकुल, अब उसका नाम नितई पाल है और मैने अपना नाम दामोदर पाल प्रसिद्ध कर रखा है। तुम्हारी मनहूसी और कंजूसी नीयत की बात चहुँ ओर इतनी अधिक फैल चुकी थी कि विवश होकर मुझे अपना वास्तविक नाम बदलना पड़ा। वरना संभव था कि लोग हमारा नाम लेने से भी सकुचाते।"

वृद्ध ने बहुत धीरे से दोनों हाथ सिर के ऊपर उठाए। उसकी उँगलियाँ इस प्रकार काँपने लगीं, मानो वह वायु में किसी अदृष्ट वस्तु के पकड़ने का प्रयत्न कर रही हों। फिर वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसे चेत हुआ तो अपने बेटे की बाँह पकड़ कर उसे घसीटता हुआ पुराने मंदिर के समीप ले गया और पूछने लगा—"तुम्हें इसके अन्दर से किसी के रोने की आवाज सुनाई देती है ?"

वृन्दावन ने उत्तर दिया—"नहीं।"

वृद्धा ने कहा—"ध्यान से सुनो, कोई आवाज अन्दर से बाबा जी ! बाबा जी ! कहती सुनाई नहीं देती ?"

वृन्दावन ने फिर कान लगाकर उत्तर दिया—"नहीं।"

इससे वृद्ध जगन्नाथ की चिंता किसी सीमा तक दूर हो गई, साथ ही उसके मस्तिष्क ने भी उसे जवाब दे दिया।

उस दिन के पश्चात् उसकी दशा यह थी कि गाँव में आवारा फिरता और लोगों से पूछा करता—"तुम्हें किसी के रोने की आवाज तो नहीं सुनाई देती।"

लोग उसके पागलपन पर ठहका लगाते।

इसके लगभग चार वर्ष पश्चात् जगन्नाथ मृत्यु शय्या पर पड़ा था। संसार का प्रकाश धीरे-धीरे उसके नेत्रो के सामने से दूर होता जा रहा था, और साँस अधिक कष्ठ से आने लगा था। सहसा वह विक्षिप्त अवस्था मे उठकर बैठ गया। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर की ओर उठा लिए और वायु मे इस प्रकार चलाने लगा जैसे किसी वस्तु को टटोल रहा हो और कहने लगा—"मेरी सीढ़ी किसने उठा ली!"

उस भयानक बंदी गृह मे से, जहाँ न देखने को प्रकाश और न साँस लेने के लिए वायु थी, बाहर निकलने के लिए सीढ़ी न पाकर वह फिर अपनी मृत्यु शय्या पर गिर पड़ा और जहाँ संसार की स्थायी आँख-मिचौली के खेल मे कोई छुपने वाला पाया नहीं गया उस श्रेणी मे लोप हो गया।

———

खोया हुआ मोती

मेरी नौका ने स्नान घाट की टूटी-फूटी सीढ़ियों के समीप लंगर डाला। सूर्यास्त हो चुका था। नाविक नौका के तख्ते पर ही मगरिब (सूर्यास्त) की नमाज अदा करने लगा। प्रत्येक सिजदे के पश्चात् उसकी काली छाया सिंदूरी आकाश के नीचे एक चमक के समान खिच जाती।

नदी के किनारे एक प्राचीन भवन खड़ा था। जिसका छज्जा इस प्रकार झुका हुआ था कि उसके गिर पड़ने की हर घड़ी भारी शंका रहती थी। उसके द्वारों और खिड़कियों के किवाड़ बहुत टूटे और ढीले हो चुके थे। चहुं ओर शून्यता छाई हुई थी। उस शून्य वातावरण मे सहसा एक मनुष्य की आवाज मेरे कानों में सुनाई पड़ी और मैं कॉप उठा।

'आप कहॉ से आ रहे हैं ?'

मैंने गर्दन घुमा कर देखा तो एक पीले लम्बे और वृद्ध मनुष्य की शक्ल दिखाई पड़ी। जिसकी हड्डियॉ निकली हुई थीं, दुर्भाग्य के लक्षण सिर से पॉव तक प्रकट हो रहे थे। वह मुझ से दो चार सीढ़ियां ऊपर खड़ा था। सिल्क का मैला कोट और उसके नीचे एक मैली सी धोती बाधे हुए। उसका निर्बल शरीर, उतरा हुआ मुख और लड़खड़ाते हुए कदम बता रहे थे कि

उस क्षुधा पीड़ित मनुष्य को शुद्ध वायु से अधिक भोजन की आवश्यकता है।

"मैं रॉची से आ रहा हूँ।"

यह सुन कर वह मेरे बराबर उसी सीढ़ी पर आ बैठा।

"और आपका काम ?"

"व्यापार करता हूं।"

"काहे का ?"

"इमारती लकड़ी, रेशम और तिरफला का।"

"आपका नाम क्या है ?"

एक क्षण सोचने के बाद मैंने उसे अपना एक बनावटी नाम बता दिया। किंतु वह अब मुझे एक टक देख रहा था।

'परंतु आपका यहॉ आना कैसे हुआ ? केवल मनोरंजन के लिये या वायु-परिवर्तन के लिये।"

मैने कहा—"वायु परिवर्तन के लिए।"

यह भी खूब कही। मैं लगभग छः वर्ष से प्रतिदिन यहाँ की ताजा वायु पेट भर कर खा रहा हूं और साथ ही १५ ग्रेन कुनीन भी। परंतु अंतर कुछ नहीं हुआ। कोई लाभ दिखाई नहीं देता।

'किंतु रॉची और यहॉ के जल-वायु मे तो पृथ्वी और आकाश का अंतर है ?'

'इस मे संदेह नही, किंतु आप यहॉ ठहरे किस स्थान पर है ? क्या इसी मकान मे ?'

सभवतः उस व्यक्ति को संदेह हो गया था कि मुझे उसके किसी गड़े हुए धन का कहीं से सुराग मिल गया है और मै उस स्थान पर ठहरने के लिए नहीं; बल्कि उसके गड़े हुए धन पर अपना अधिकार जमाने आया हूँ। मकान की भलाई बुराई के

सम्बंध में एक शब्द तक कहे बिना उसने अपने उस मकान के स्वामी की पंद्रह साल पूर्व की एक कथा सुनानी आरम्भ कर दी।

उसकी गंजी खोपड़ी में गहरी और चमकदार काली आँखें मुझे कॉलरिज के पुराने नाविक का स्मरण करा रही थी। वह एक स्थानीय स्कूल मे अध्यापक था।

नाविक ने नमाज़ से निवृत होकर रोटी बनानी आरम्भ कर दी। सूर्यास्त होने के समय आकाश के सिंदूरी रंग पर अधिकार जमाने वाली अन्धेरी मे वह खडहर-भवन एक अनोखा भयानक दृश्य प्रदर्शित कर रहा था।

मेरे पास सीढ़ी पर बैठे हुए उस दुबले और लम्बे स्कूल मास्टर ने कहा—'मेरे इस गांव मे आने से लगभग दस साल पूर्व एक व्यक्ति फणीभूषण सहाय इस मकान मे रहता था। उस का चाचा दुर्गामोहन बिना अपने किसी उत्तराधिकारी के मर गया। जिसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति और विस्तृत व्यापार का अकेला वही अधिकारी बना।

पाश्चात्य शिक्षा और नई सभ्यता का भूत फणीभूषण पर सवार था। कालेज मे कई वर्षों तक शिक्षा प्राप्त कर चुका था। वह अंग्रेजो की भाँति कोठी मे जूता पहने फिरा करता था, यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये लोग उसके साथ कोई व्यापारिक रियायत देने के रवादार न थे। वे भलि भांति जानते थे कि फणीभूषण आख़िर को नये बंगाल की वायु में ले रहा है।

इसके अतिरिक्त एक और बला उसके सिर पर सवार थी। अर्थात् उसकी पत्नी-परम सुन्दरी थी। यह सुन्दर बला और

पाश्चात्य शिक्षा दोनो उसके पीछे ऐसे पड़ी थीं कि तोबा भली,!,
खर्च सीमा से बाहर। तनिक शरीर गर्म हुआ और झट सरकारी
डाक्टर खट-खट करते आ पहुंचे।

विवाह सम्भवतः आपका भी हो चुका है। आपको भी
वास्तव में यह अनुभव हो गया कि स्त्री कठोर स्वभाव
वाले पति को सर्वदा पसन्द करती है। वह 'अभागा व्यक्ति जो
अपनी पत्नी के प्रेम से वंचित हो, यह न समझ बैठे कि वह इस
सम्पत्ति से माला-माल नहीं या सौन्दर्य से वंचित है नहीं
विश्वास कीजिये वह अपनी सीमा से अधिक कोमल प्रकृति
और प्रेम के कारण इस दुर्भाग्य मे फंसा हुआ है। मैंने इस
विषय मे खूब सोचा है और इस तथ्य पर पहुंचा हूं और यह है
भी ठीक। पूछिये क्यो ? लीजिये इस प्रश्न का संक्षिप्त और
विस्तृत उत्तर इस प्रकार है।

यह तो आप अवश्य मानेंगे कि कोई भी व्यक्ति उस समय
तक वास्तविक प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक कि उसे
अपने जन्म जात विचार और स्वभाविक योग्यताओ के प्रकट
करने के लिए एक विस्तृत क्षेत्र प्राप्त न हो। हरिन को आपने
देखा है वह अपने सीगों को वृक्ष से रगड़ कर आनन्द प्राप्त करता
है, नर्म और नाजुक केले के खम्ब से नहीं। सृष्टि के आरम्भ से
ही नारी जाति इस जंगली और कठोर-स्वभाव पुरुष को जीतने
के लिये विशेष ढग सीखती चली आ रही है। यदि उसे पहिले
ही से आज्ञाकारी पति मिल जाए तो उसके वह आकर्षक हत्कंडे
जो उस को मां और दादियो से वपोती रुप मे मिले हैं, और
लम्बे समय से निरन्तर चलते रहने के कारण सीमा से अधिक
सत्य भी सिद्ध हुए हैं, न केवल बेकार रह जाते है बल्कि स्त्री को
भार स्वरुप मालूम होने लगते है।

स्त्री अपने आकर्षक सौंदर्य के बल पर पुरुष के प्रेम और उसकी आज्ञा-कारिता प्राप्त करना चाहती है। किन्तु जो पति स्वयं ही उसके सौंदर्य के सामने झुक जाए, वह वास्तव में दुर्भाग्य शाली होता है, और उससे अधिक उसकी पत्नी।

वर्तमान सभ्यता ने ईश्वर प्रदत्त उपहार अर्थात् "पुरुष की सुन्दरता कठोरता" उससे छीन ली है। पुरुष ने अपनी निर्बलता से स्त्री के दाम्पत्य-बन्धन को बड़ी सीमा तक ढीला कर दिया है। हमारी इस कहानी का अभागा फनी-भूषण भी इस नवीन सभ्यता की छलना से छला हुआ था। और यही कारण था कि न वह अपने व्यापार में सफल था और न अपने गृहस्थिक जोवन से सन्तुष्ट। यदि एक ओर वह अपने व्यापार में लाभ से बेखबर था तो दूसरी ओर अपनी पत्नो के पतित्व अधिकार से वंचित।

फनीभूषण की पत्नी मनीमलिका को प्रेम और विलास-सामग्री बेमांगे मिली थी। उसे सुन्दर और बहुमूल्य साड़ियो के लिए अनुनय विनय तो क्या पति से कहने की भी आवश्यकता न होती थी। सोने के आभूषणों के लिये उसे झुकना न पड़ता था। इस लिए उसके स्त्रियोचित स्वभाव को आज्ञा देने वाले और अपराधी के ढंग से अपने मे सेविका की प्रेममयी भावनाओ में आवेश की स्थिति उत्पन्न न कर पाती थी। उसके कान-"लो स्वीकार करो" के मधुर शब्दो से परिचित थे। किन्तु उसके ओठ "लाओ" और "दो" से सर्वथा अपरिचित। उसके सीधे स्वभाव का पति इस मिथ्या भावना की कहावत मे प्रसन्न था कि 'कर्म किये जाओ फल की कामना मत करो, तुम्हारा परिश्रम कभी अकार्थ नहीं जाएगा।" वह इसी मिथ्या भावना के पीछे हाथ पैर मारे जा रहा था। परिणाम यह हुआ कि उसकी पत्नी उसे

ऐसी मशीन (यन्त्र) समझने लगी जो बिना चलाए चलती थी। स्वयं ही बिना कुछ कष्ट किये सुन्दर साड़ियाँ और बहू मूल्य आभूषण बना कर उसके कदमो पर डालती रहती थी। उसके पुर्जे इतने शक्तिशाली और देर तक चलने वाले थे कि कभी भी उन को तेल देने की आवश्यकता न होती थी।

फनीभूषण की जन्मभूमि और रहने का स्थान समीप ही एक देहात का गाँव था किन्तु उसके चचा के व्यापार का मुख्य स्थान यही शहर था। इसी कारण उस की आयु का अधिक भाग यहीं व्यतीत हुआ था। वैसे माँ मर चुकी थी, किंतु मौसी और मामियाँ आदि ईश्वर की कृपा से विद्यमान थीं। परन्तु वह विवाह के बाद ही फौरन मनीमलिका को अपने साथ ले आया था। उसने विवाह अपने सुख के लिये किया था न कि अपने सम्बन्धियों की सेवा के लिए।

पत्नी और अन्य अधिकारों मे पृथ्वी आकाश का अन्तर है। पत्नी का प्राप्त कर लेना और फिर उसकी देख-रेख करना, उसको अपना बनाने के लिए काफी नहीं हुआ करता।

मनीमलिका सोसाएटी की अधिक भक्त न थी। इस लिए व्यर्थ का खर्च भी न करती थी बल्कि इसके प्रतिकूल बडी साव धानी रखने वाली थी। जो उपहार फनी भूषण उसको एक बार ला देता था फिर क्या मजाल कि उसको हवा भी लग जाए। वह सावधानी से सब रख दिया जाता था। कभी ऐसा नहीं देखा गया कि किसी पड़ौसन को उसने भोजन पर बुलाया हो। वह उपहार या भेट लेने-देने के पक्ष मे भी न थी।

सब से अधिक आश्चर्य की यह बात थी कि चौबीस साल की आयु मे भी मनी-मलिका एक चौदह वर्ष की सुन्दर युवती मालूम होती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका रूप लावण्य

केवल स्थायी ही नहीं, बल्कि चिरस्थायी रहने वाला है। मनी मालिका के पार्श्व मे हृदय न था बर्फ का टुकड़ा था। जिस को प्रेम की तनिक भी तपत न पहुँची थी। फिर वह पिघलता क्यों ? और उसका यौवन ढलता किस प्रकार ?

जो वृक्ष पत्तो से लदा हुआ होता है प्रायः फल से वंचित रहता है। मनी-मलिका का सौंदर्य भी फलहीन था। वह बिना औलाद के थी। रख-रखाओ और व्यक्तिगत देख-रेख करती भी तो काहे की, उसका सारा ध्यान अपने आभूषणो पर ही केन्द्रित था। सन्तान होती तो वसंत की मीठी-मीठी धूप की भाँति उसके बर्फ से हृदय को पिघलाती और वह निर्मल जल उसके दाम्पत्य-जीवन के मुरझाये हुए वृक्ष को हरा कर देता।

मनीं-मलिका गृहस्थ के काम काज और परिश्रम से भी न कतराती थी। जो काम वह स्वयं कर सकती थी उसका पारिश्रमिक देना उसे खलता था। दूसरो के कष्ट का न उसे ध्यान था और न नाते रिश्तेदारो की चिंता। उसको अपने काम से काम था। इस शांत जीवन के कारण वह स्वस्थ और सुखी थी। न कभी चिता होती थी न कोई कष्ट।

प्रायः पति इसे संतोष तो क्या सौभाग्य समझेंगे। क्योंकि जो पत्नी हर समय फरमाइशे लेकर पति की छाती पर चढ़ती रहे वह सारे गृहस्थ के लिए एक रोग सिद्ध होती है।

कम से कम मेरी तो यही सम्मति है कि सीमा से बढ़ा हुआ प्रेम पत्नी के लिये सम्भवतः गौरव की बात हो, किंतु पति के लिये एक विपत्ति से कम नहीं तनिक सोचिये तो कि क्या मनुष्य का यही काम रह गया है कि वह हर समय यह तोलता जोखता रहे कि उसकी पत्नी उसे कितना चाहती है मेरा तो यह दृष्टिकोण है कि गृहस्थ का जीवन उस समय

अच्छा व्यतीत होता है जब पति अपना काम करे और पत्नी अपना।

स्त्री का सौंदर्य और प्रेम यानी तिरिया-चरित्र पुरुष की बुद्धि से परे की चीज है। किन्तु स्त्री पुरुष के प्रेम के उतार-चढ़ाव और उसके न्यूनाधिक को बहुत गम्भीर दृष्टि से देखती रहती है। वह शब्दों से लहजे को और छुपी हुई बात से अर्थ को झट अलग कर लेती है। इसका कारण केवल यह है कि जीवन के व्यापार मे स्त्री की पूँजी ले दे कर केवल पुरुष का प्रेम है। यही उसके जीवन का एकमात्र सहारा है। यदि वह पुरुष की रुचि की वायु के प्रवाह को अपनी जीवन नैया के वितान से स्पर्श करने मे सफल हो जाए तो विश्वासत: उसकी नैया अभिप्राय: के तट तक पहुँच जाती है। इसी लिए प्रेम का कल्पना-यन्त्र पुरुष के हृदय मे नहीं, बल्कि स्त्री के हृदय में लगाया गया है।

प्रकृति ने पुरुष और स्त्री की रुचि में स्पष्ट रूप से अन्तर रखा है। किंतु पाश्चात्य सभ्यता इस स्त्री-पुरुष के अन्तर को मिटा देने पर तुली हुई है। स्त्री पुरुष बनी जा रही है और पुरुष स्त्री। स्त्री पुरुष के चरित्र तथा उसके कार्य क्षेत्र को अपने जीवन की पुंजी और पुरुष स्त्रियोचित चरित्र तथा नारी कर्म-क्षेत्र को अपने जीवन का आनन्द समझने लगे हैं। इसलिए यह कठिन हो गया है कि विवाह के समय कोई यह कह सके कि वधु स्त्री है या स्त्रीनुमा पुरुष। इसी प्रकार स्त्री अनुमान लगा सकती है कि जिस के पल्ले वह बंध रही ह वह पुरुष है या पुरुषनुमा स्त्री। इसलिए कि अन्तर केवल हृदय का है। पर क्या जाने कि पुरुष का हृदय मरदाना है या जनाना।

मै बहुत देर से आपकी शुष्क बातें सुना रहा हूँ। परन्तु

किसी सीमा तक क्षमा योग्य भी हूं। मैं अपनों से दूर निर्वासित का जीवन व्यतीत कर रहा हूॅ। मेरी दशा उस तमाशा देखने वाले दर्शक के समान है जो दूर से गृहस्थ-जीवन का तमाशा देख रहा हो, और वह उसके गुणो से लाभ उठाकर केवल उसके लिए कुछ सोच सकता हो। इसी लिए दाम्पत्य जीवन पर मेरे विचार अत्यन्त गम्भीर है। मैं अपने शिष्यों के सम्मुख तो यह विचार प्रकट कर नहीं सकता इसी कारण से आपके सामने प्रकट करके अपने हृदय को हल्का कर रहा हूं। आप अवकाश के समय इन पर विचार करें।

सारॉंश यह कि यद्यपि गृहस्थ जीवन मे प्रकट रूप में कोई कष्ट फनीभूषण को न था। समय पर भोजन मिल जाता था, घर का प्रबन्ध सुचारू रूप से चल रहा था, किन्तु फिर भी एक प्रकार की विकलता और अविश्वास उसके हृदय मे समाया हुआ था। और वह नही समझ सकता था कि वह है क्या? उसकी दशा उस बच्चे के समान थी जो रो रहा है और नहीं जानता कि उसके हृदय मे कोई इच्छा है या नहीं।

अपनी जीवन संगिनी के हृदय के स्नेह रिक्त स्थान को वह सुनहरे और मूल्यवान आभूषणों तथा इसी प्रकार के अन्य उपहारो से भर देना चाहता था।

उसका चचा दुर्गामोहन दूसरी तरह का व्यक्ति था। वह अपनी पत्नी के प्रेम को बहुमूल्य पर खरीदने के पक्ष में न था और न ही वह प्रेम के विषय मे चिड़चिड़े स्वभाव का था। फिर भी अपनी जीवन संगिनी के प्रेम की प्राप्ति के लिए भाग्यशाली था।

जिस प्रकार एक सफल दुकानदार को कहीं तक बे लिहाज होना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार एक सफल पति बनने के

लिए पुरुष को कहीं तक कठोर स्वभाव बन जाना भी अति आव-श्यक है। सानुरोध आप को मैं यह सीख देता हूं।

ठीक उसी समय गीदड़ों की चीख पुकार जंगल से सुनाई दी। ऐसा ज्ञात होता था कि या तो वे उस स्कूल के अध्यापक के दाम्पत्य जीवन के मनोविज्ञान पर घृणित हँसी हंस रहे हैं या फनीभूषण की कहानी के प्रवाह को कुछ क्षणों के लिए उस चीख पुकार से रोक दिया है। फिर भी बहुत जल्दी वह चीख पुकार रुक गई और पहले से भी गहन अन्धेरी और शून्यता वायुमण्डल पर छा गई। किन्तु स्कूल के अध्यापक ने पुनः कथा आरम्भ की।

सहसा फनीभूषण के बड़े तिजारती कारोबार में शिक्षा प्रद अवनति दृष्टिगोचर हुई। यह क्यों हुआ? इसका उत्तर मेरी बुद्धि से परे है। सक्षिप्त में यह कि कुसमय ने उसके लिये बाज़ार मे साख रखना कठिन कर दिया। यदि किसी प्रकार कुछ दिनों के लिए वह एक बहुत बड़ी पूंजी प्राप्त करके मण्डियों मे फैला सकता तो सम्भव था कि बाज़ार से माल को न खरीदने के तूफान से बच निकलता। किन्तु इतनी बड़ी रक़म का तुरन्त प्रबन्ध मौसी जी का घर न था। यदि स्थानीय साहूकारो से कर्ज माँगता तो अनेक प्रकार की अफवाहे फैल जातीं और उस की साख को असहनीय हानि पहुँचती। यदि पत्र व्यवहार से भुग-तान का ढंग करता तो रुक्का या पर्चे के बिना संभव न था और इससे उसकी ख्याति को बहुत बड़ा आघात पहुँचने की सम्भावना थी। केवल एक युक्ति थी, कि पत्नी के आभूषणों पर रुपया प्राप्त किया जाए और यह विचार उसके हृदय मे दृढ़ हो गया।

फनीभूषण मनीमलिका के पास गया। परन्तु वह ऐसा पति

न था कि पत्नी से स्पष्ट और सरलता से कह सके। दुर्भाग्यवश उसे अपनी पत्नी से उतना घनिष्ट प्रेम था कि उपन्यास के किसी नायक को नायिका से हो सकता है।

सूर्य का आकर्षण पृथ्वी पर बहुत अधिक है, किन्तु अधिक प्रभावशाली नहीं। यही दशा फनीभूषण के प्रेम की थी। उस प्रेम का मनीमलिका के हृदय पर कोई प्रभाव न था। किंतु मरता क्या न करता, आर्थिक कठिनाई की चर्चा, प्रोनोट, कर्ज़ का कागज़, बाज़ार के उतार चढ़ाव की दशा, इन सब बातों को कम्पित और अस्वाभाविक स्वर मे फनीभूषण ने अपनी पत्नी को बताया। झूठे मान, असत्य विचार और भावावेश में साधारण सी समस्या जटिल बन गई। अस्पष्ट शब्दों में विषय की गम्भीरता बता कर डरते-डरते अभागे फनीभूषण ने कहा—"तुम्हारे आभूषण।"

मनीमलिका ने न 'हां' कही और न 'ना' और उसके मुख से भी कुछ ज्ञात न होता था। उस पर गहरा मौन छाया हुआ था। फनीभूषण के हृदय को गहरा आघात पहुंचा। किन्तु उसने प्रकट न होने दिया। उसमें पुरुषो का सा वह साहस न था कि प्रत्येक वस्तु का वह प्रतिदिन निरीक्षण करता। उसके इन्कार पर उसने किसी प्रकार की चिन्ता प्रदर्शित न की। वह ऐसे विचारो का व्यक्ति था कि प्रेम के संसार मे शक्ति और जबर्दस्ती से काम नहीं चल सकता। पत्नी की स्वीकृति के बिना वह आभूषणों को छूना भी पाप समझता था। इस लिये निराश होकर रुपये की प्राप्ति के लिये कुछ युक्तियाँ सोच कर कलकत्ता चला गया।

: २ :

पत्नी अपने पति को प्रायः जानती है, उसकी नस नस से परिचित होती है। पति अपनी पत्नी के चारित्र्य का इतना गम्भीर अध्ययन नहीं कर सकता। यदि पति कुछ गम्भीर व्यक्ति हो तो पत्नी के चरित्र के कुछ भाग उसकी तीक्ष्ण दृष्टि से बचा कर जान लेता है। सम्भवतः यह सत्य है कि मनी मलिका ने फनीभूषण को अच्छी तरह नहीं समझा। एक पाश्चात्य व्यक्ति का व्यक्तित्व मूर्ख स्त्री के अन्धविश्वास सा जीवन और उसकी समझ बूझ से प्राय ऊंचा होता है। वह स्वयं स्त्री की भाँति एक रोमाँचकारी व्यक्तित्व बन कर रह जाता है, और इसी कारण पुरुष की उन दशाओ मे से किसी मे भी फनी भूषण को पूरी तरह सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

मूर्ख—अन्धा जंगली:—

मनी मलिका ने अपने बड़े सलाहकार मधुसूदन को बुलाया। यह दूर के रिश्ते से उसका चचेरा भाई था और फनीभूषण के व्यापार मे एक आसामी की देख रेख पर नियुक्त था। योग्यता के कारण नहीं, वल्कि रिश्तेदारी के जोर पर वह उस आसामी पर कब्जा किये हुए था। काम की चतुराई के कारण नहीं, वल्कि रिश्तेदारी की धोस में, वेतन से भी अधिक रकम ले उड़ता था। मनी मलिका ने सारी राम कहानी उसके सामने वर्णन की और अन्त मे पूछा—"क्या करूं, नेक सलाह दो।"

मधु ने बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता के ढंग से सिर हिला कर कहा—"मेरा माथा ठिनकता है, इस मामले मे कुशलता दिखाई नहीं देती।"

सांसारिक बुद्धिहीन व्यक्तियो को हर कार्य मे सन्देह ही

दिखाई दिया करता है। उनको किसी काम में कुशलता नहीं दिखाई देती।

"फनी भूषण को रुपया तो मिलने से रहा, अन्त में तुम्हें आभूषणों से ही हाथ धोने पड़ेंगे।"

सांसारिक समस्याओं और पुरुष तथा स्त्री के सम्बन्ध में जो मनि मलिका के अपने व्यक्तिगत विचार थे, उनके प्रकाश में मधु के निकाले हुए परिणाम का प्रथम भाग सम्भावित और दूसरा सत्य मालूम होता था। विश्वास उसके हृदय से जाता रहा था, सन्तान उसके थी ही नहीं। बाकी रहा पति, वह किसी गिनती में ही न था। अत उसका सम्पूर्ण ध्यान अपने आभूषण पर केन्द्रित था। इन्हीं से उसके हृदय की प्रसन्नता थी, ये ही उसका सन्तान के समान प्रिय थे। सन्तान को माँ से छीन लीजिये फिर देखिये ममता की क्या दशा होती है। यही दशा मनीमलिका की थी। उसका यह विचार था कि उसके आभूषण पति के खयाली मनसूबों की भेंट हो जाएगे।

"फिर मुझे क्या करना चाहिए?"

"अभी मैके चली जाओ सारे आभूषण वहां छोड़ आओ।" चालाक मधु ने कहा।

इस प्रकार उसकी हाँडी को भी बघार लगता है। यदि सारे नहीं तो कोई आभूषण मधु को अपने हत्थे चढ़ने की भी आशा थी। मनी मलिका उसी समय सहमत हो गई।

बढ़ते हुए अन्धकार से स्कूल के अध्यापक पर भी गम्भीरता छा गई थी, किन्तु कुछ क्षणों के पश्चात् उसने फिर वर्णन आरम्भ किया।

: ३ :

झुटपुटे के समय जब कि सावन की घटाएं आकाश पर डेरा जमाए हुए थीं, वर्षा मूसलाधार हो रही थी, एक नौकाने रेतीली सीढ़ियों पर लंगर डाला। दूसरे दिन प्रातः घटा टोप अन्धेरे में मनी मलिका आई और एक मोटी चादर में सिर से पांव तक लिपटी हुई नौका पर सवार हो गई !

मधु जो रात से उसी नौका में सोया हुआ था, उस की आहट से जाग गया।

"आभूषणों की सन्दूकची मुझे दे दो; ताकि सुरक्षित रख लूं।"

"अभी ठहरो जल्दी क्या है ? चलो तो सही, आगे देखा जाएगा।"

नौका का लंगर उठा और वह फुंकारती हुई नदी की लहरों से झपटने लगी। मनी मलिका ने सारे आभूषण एक-एक करके पहन लिये थे। सन्दूक में बन्द करके ले जाना असुरक्षित मालूम होता था। मधु हक्का बक्का रह गया, जब उसने देखा कि मनी के पास सन्दूकची नहीं है। उस को इस की कल्पना भी न थी कि उसने आभूषणों को अपने प्राणों से लगा रखा है।

चाहे मनीमलिका ने फनीभूषण को न समझा था किन्तु माधो के चरित्र का बहुत ही ठीक अन्दाजा लगाया था।

जाने से पहले माधो ने फनीभूषण के एक विश्वासी मुनीम को लिख भेजा था कि मैं मनीमलिका के साथ उसको मेके पहुंचाने जा रहा हूं। यह मुनीम दुनिया का अनुभवी और बड़ी आयु का था और फनीभूषण के पिता के समय से ही उसके साथ था। उसको मनीमलिका के जाने से बहुत चिन्ता और

सन्देह हुआ उसने अपने मालिक को फौरन लिखा। वफादारी और खैरख्वाही ने उसे प्रेरणा दी और उसने अपने पत्र मे अपने मालिक को खूब खरी-खरी सुनाई। पति की लाज और दूरदर्शिता दोनों का यह अर्थ नहीं है कि पत्नी को इस प्रकार स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय। मनीमलिका के हृदय के सन्देह को फनी भूषण समझ गया। उसे अत्यन्त दुःख हुआ। वह इस सम्बन्ध में एक शब्द भी शिकायत का जबान पर न लाया था। अपमान और कष्ट सहे, किन्तु उसने मनी मलिका पर कोई दबाव डालना उचित न समझा। किन्त फिर भी इतना अविश्वास। वर्षों से वह मेरी एकान्त की और सांसारिक साथी रही है। आश्चर्य है कि उसने मुझे तनिक भी न समझा।

इस मौके पर कोई और होता तो क्रोधावेश में न जाने क्या कर बैठता, किन्तु फनी भूषण मौन था और अपना दुःख प्रकट करके मनी मलिका को दुखित करना उचित न समझता था।

पुरुष को चाहिये कि वह दावानल की भांति जरा-जरा सी बात पर भड़क जाए। जिस प्रकार स्त्री सावन के बादलों की भाँति बात-बात पर आँसू की झड़ी लगा देती है। किन्तु अब वह पहले से दिन कहाँ ?

फनीभूषण ने मनीमलिका को उसकी अनुपस्थिति मे बिना सूचना दिये जाने के विषय में कोई डाँट फटकार का पत्र न लिखा। बल्कि यह निश्चय कर लिया कि मरते दम तक उस के आभूषणों का नाम तक जबान पर न लायेगा। रुपये की वसूली में फनी भूषण सफल हो गया। उसके व्यापारिक रास्ते खुल गये। दस दिन के पश्चात् वह अपने घर को वापस चला, इस विचार को लिये हुए कि आभूषण मैके मे छोड़ कर मनी

मलिका घर को वापस आगई होगी।
दस दिन पहले का तुच्छ और असफल प्रश्न-कता जब
मस्तानी चाल से घर में कदम रखेगा और पत्नी की दृष्टि इस
की सफलता से दमकते हुए मुख पर पड़ेगी, तो वह अपने इन्कार
पर स्वयं लज्जित होगी और अपनी नादानी पर पश्चाताप प्रकट
करेगी। इन विचारों से मगन फनीभूषण शयन कक्ष मे पहुँचा।
परन्तु द्वार पर ताला लगा हुआ था। ताला तुड़वा कर अन्दर
घुसा तो तिजूरी के किवाड़ खुले पड़े थे।

इस आघात से वह लड़खड़ा गया—"शुभ चिन्ता और
प्रेम" उस समय उसके पास निरर्थक और अस्पष्ट शब्द थे। सोने
का पिंजरा, जिसकी प्रत्येक सुनहरी तिल्ली को उसने अपने प्राण
और आन का मूल्य देकर प्राप्त किया था, टूट चुका था और
खाली पड़ा था। वह अब दिवालिया था और सिवाय गहरी
उसांस, आँसू और हृदय की टीस के उस के पास कुछ न था।

मनी मलिका को बुलाने का ध्यान भी उस के हृदय मे न
आया। उसने यह निश्चय कर लिया कि वह जब चाहे आए-
आए या न आए, किन्तु वृद्ध मुनीम इस निश्चय के विरुद्ध था।
वह अनुरोध कर रहा था कि कम से कम कुशल क्षेम अवश्य
मंगानी चाहिये। इतनी देरी का कोई कारण समझ मे नहीं
आता। उसके अनुरोध से विवश होकर मनीमलिका के मैके को
आदमी भेजा गया। किन्तु वह यह अशुभ समाचार लाया कि
न यहाँ मनी कलिका आई है न माधो।

यह सुना तो पाँव तले की जमीन निकल गई। नदी पार
आदमी दौड़ाये गये। खोज और प्रयत्न में किसी प्रकार की कमी
न रखी। किंतु पता न चलना था, न चला। यह भी मालूम
न हो सका कि नौका किस दिशा मे गई है और नौका का

नायिका कौन था।

निराश फनीभूषण हृदय मसोस कर बैठ गया

: ४ :

कृष्ण जन्माष्टमी की शाम थी। वर्षा हो रही थी। फनी भूषण शयन कक्ष में अकेला था। गांव में एक व्यक्ति भी बाकी न था। जन्माष्टमी के मेले ने गांव का गांव सूना कर दिया था मेले की चहल पहल और महाभारत के नाटक के शौक ने बच्चे से लेकर बूढ़े तक को खींच लिया था। शयनकक्ष की खिड़की का एक किवाड़ बन्द था। फनीभूषण दीन दुनिया से बेखबर बैठा था।

संध्या का झुटपुटा रात्रि के गहन अन्धेरे में परिवर्तित हो गया। किन्तु इस भयावने अन्धेरे, मूसलधार वर्षा और ठंडी वायु का उसको ध्यान भी न था। दूर से गाने की मधुर ध्वनि से उसकी श्रवण शक्ति सर्वथा बेसुध थी।

दीवार पर तस्वीर और लक्ष्मी का चित्र लगे हुए थे। फर्श साफ था और प्रत्येक वस्तु उपयुक्त स्थान पर रखी हुई थी।

पलंग के समीप एक खूंटी पर एक सुंदर और आकर्षक साड़ी लटकी हुई थी। सिरहाने एक छोटी सी मेज पर पान का बीडा स्वयं मनीमलिका के हाथ का बना हुआ रखा सूख चुका था।

विभिन्न वस्तुएँ सलीके से अपने-अपने स्थान पर रखी हुई थीं। एक ताक मे मनीमलिका का प्रिय लैम्प रखा हुआ था। जिसको वह अपने हाथ से प्रकाशित किया करती थीं और जो उसकी अंतिम विदाई का स्मरण करा रहा था। मनी की स्मृति

में इन सम्पूर्ण वस्तुओं का विशेष रुदन उस कमरे को एक कामना का शोक-स्थल बनाए हुए था। फनीभूषण का हृदय स्वतः कह रहा था—'प्यारी मनी आओ और अपने प्राणमय सौंदर्य से इन सब में प्राण फूंक दो!'

कहीं आधी रात के लगभग जाकर बूंदों की तड़तड़ थमी। किन्तु फनीभूषण उसी विचार में तल्लीन बैठा था।

अन्धेरी रात के असीमित धुन्धले वायुमण्डल पर मृत्यु की राजधानी का सिक्का चल रहा था। फनीभूषण की दुखित आत्मा का रुग्न स्वर इतना पीड़ामय था कि यदि मृत्यु की नींद सोने वाली मनीमलिका भी सुन पाए तो एक बार नेत्र खोल दे और अपने सोने के आभूषण पहने हुए उस अन्धेरे मे एक ऐसी प्रकट हो जैसे कसौटी के कठोर पत्थर पर किंचित सुनहरी रेखा।

: ५ :

सहसा फनीभूषण के कान में किसी के पांवों की सी आहट सुनाइ दी। ऐसा मालूम होता था कि नद तट से वह उस घर की ओर वापस आ रही है। नदी की काली लहरे रात की अन्धेरी मे मालूम न होती थीं। आशा की प्रसन्नता ने उसे जीवित कर दिया। उसके नेत्र चमक उठे। उसने अन्धकार के पर्दे को फाड़ना चाहा, किन्तु व्यर्थ। जितना अधिक वह नेत्र फाड़ कर देखता था, अन्धकार के पर्दे और अधिक गहन होते जाते थे। और यह मालूम होता था कि प्रकृति इस भयावनी अन्धेरी में मनुष्य के हस्तक्षेप के विरुद्ध विद्रोह कर रही है। आवाज समीप से समीप होती गई। यहाँ तक कि सीढ़ियो पर

चढ़ी और सामने द्वार पर आकर रुक गई; जिस पर ताला लगा हुआ था। द्वारपाल भी मेले में गया हुआ था। द्वार पर धीमी सी खुट-खुट सुनाई दी। ऐसी जैसी आभूषणों से सुसज्जित स्त्री का हाथ द्वार खटखटा रहा हो। फनीषभूण सहन न कर सका। जीने से उतर कर बरामदे से होता हुआ द्वार पर पहुंचा। ताला बाहर से लगा हुआ था। सम्पूर्ण शक्ति से उसने द्वार हिलाया। शोर गुल से उसका सपना टूटा तो वहाँ कुछ न था।

वह पसीने मे सराबोर था, हाथ पाँव ठडे पड़े हुए थे। उस का हृदय टिमटिमाते हुए दीपक के अंतिम प्रकाश की भांति जल कर बुझने को तैयार था।

वर्षा की तड़तड़ ध्वनि के सिवाय कुछ भी सुनाई न देता था।

फनीभूषण से यह 'वास्तविकता' किंचित मात्र भी विस्मृत न हुई थी कि उसकी अधूरी इच्छाएं पूरी होते-होते रह गईं।

: ६ :

दूसरी रात को फिर नाटक होने वाला था, नौकर ने आज्ञा चाही तो चेतावनी दे दी कि बाहर का द्वार खुला रहे।

'यह कैसे हो सकता है। विभिन्न स्वभाव के व्यक्ति बाहर से मेले मे आये हुए हैं, दुर्घटना का संदेह है।' नौकर ने कहा।

'नहीं तुम जरूर खुला रखो।'

'तो फिर मै मेले नहीं जाऊंगा।'

'नहीं तुम अवश्य जाओ।'

नौकर आश्चर्य में था कि आखिर उनका आशय क्या है ?

जब संध्या हो गई और चहुँ ओर अंधकार छा गया तो फनीभूषण उस खिड़की मे आ बैठा। आकाश पर गहरा कोहरा छाया हुआ था, घनघोर घटाए ऐसी तुली खड़ी थी। कि जलथल एक कर दे, चहुँ ओर शून्यता का राज्य था। ऐसा मालूम होता था कि सारे संसार का वायु मंडल मौन भाव से किसी मधुर ध्वनि को सुनने के लिये अपने कान लगाए हुए है। मेढ़को की निरंतर टर्र-टर्र और ग्रामीण स्वागों की कम्पित ध्वनि भी उस शून्यता मे बाधक न मालूम होती थी।

आधी रात के लगभग फिर सम्पूर्ण शोर, चहल पहल संध्या के मौन मे सोने लगी। रात ने अपने काले वस्त्रों पर एक और काला लबादा पहन लिया। पहली रात की भांति फनीभूषण को फिर वही आवाज सुनाई दी। उसने नदी की ओर दृष्टि उठा कर भी न देखा। ईश्वर न करे कि कोई अनाधिकार चेष्टा द्वारा समय से पूव ही उसकी आकाक्षाओ का खून करदे। वह मूर्तिवत् बैठा रहा। जैसे किसी ने लकड़ी की प्रतीमा को बनाकर सरेश से कुर्सी पर चिपका दिया हो।

कदमों की आहट सुनसान घाट की सीढ़ियों की ओर से आकर मुख्य द्वार मे प्रविष्ट हुई। चक्कर वाले जीने की सीढ़ियों पर चढ़ कर अन्दर के कमरे की ओर बढ़ी। लहरो की प्रतिस्पर्धा मे आपने नौका को देखा होगा। इसी प्रकार फनीभूषण का हृदय बल्लियो उछलने लगा। वह आवाज बरामदे से होती हुई शयनकक्ष की ओर आई और ठीक द्वार पर आकर ठहर गई अब केवल द्वार प्रवेश करना शेष था।

फनाभूषण की आकांक्षाए मचल उठीं, संतोष का आंचल हाथ

से सर्वथा जाता रहा, वह सहसा कुर्सी से उछल पड़ा। एक दुखभरी चीख—'मनी' उसके मुख से निकली। किन्तु दु:ख है कि उसके पश्चात् मेंढकों की आवाज और वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदों की तड़तड़ के सिवाय और कुछ न था।

: ७ :

दूसरे दिन मेला छंटने लगा, दुकाने उठनी आरम्भ हो गईं, दर्शक अपने-अपने घरों को वापस आने लगे। मेले की शोभा समाप्त हो गई।

फनीभूषण ने दिन में व्रत रखा और सब नौकरों को आज्ञा दे दी कि आज रात को कोई भी व्यक्ति न रहे। नौकरों का विचार था कि हमारे मालिक आज किसी विशेष मंत्र का जाप करेंगे।

संध्या समय जब कहीं भी आकाश की टुकड़ियों पर बादल न थे वर्षा से धुले हुए वायुमडल मे सितारे चमकने लगे थे, पूर्णिमा का चॉद निकला हुआ था, वायु भी मंद-मंद बह रही थी, मेले से लौटे हुए दर्शक अपनी थकान उतार रहे थे और बेसुध हुए सो रहे थे। नदी पर कोई नौका दिखाई न देती थी।

फनीभूषण उस खिड़की मे आ बैठा और तकिये मे सिर लगाकर आकाश की ओर ध्यान से देखने लगा। उसको उस समय वह याद आया जब वह कालेज मे शिक्षा प्राप्त कर रहा था। संध्या समय चौक मे लेट कर अपनी भुजा पर सिर रख कर झिलमिलाते हुए सितारों को देख कर, मनी मलिका की सुन्दर कल्पना मे खो जाया करता था। उन दिनो कुछ समय का विछोह मिलन की आशाओं को अपने ऑचल में लिये बहुत ही

प्रिय मालूम हुआ करता था। परन्तु वह सब कुछ अब "स्वप्न" मालूम होता था।

सितारे आकाश से ओझल होने लगे, अन्धकार ने दाये बायें और नीचे ऊपर सब ओर से पर्दे डालने आरम्भ कर दिये, और यह पर्दे आँख की पलकों की भाँति परस्पर मिल गये। संसार स्वप्नमय हो गया।

किन्तु आज फनी भूषण पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव-सा था। वह अनुभव कर रहा था कि उसकी आशाओं के पूर्ण होने का समय समीप है।

पिछली रातों की भाँति किसी के पाँवों की आहट फिर स्नान घाट की सीढ़ियों पर चढ़ने लगी। फनी भूषण ने आँखे बन्द कर लीं और विचारों मे निमग्न हो गया। पाँव की आहट उन्मुक्त द्वारा से प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण मकान में होती हुई शयनकक्ष के द्वार पर आकर विलीन हो गई। फनी-भूषण का सम्पूर्ण शरीर काँपने लगा। परन्तु वह दृढ़ निश्चय कर चुका था कि अन्त तक आँखे न खोलेगा। आहट कमरे मे प्रविष्ट हुई, खूंटी पर की साड़ी, ताक के लैम्प, खुले हुए पानदान और अन्य वस्तुओं के पास थोड़ी-थोड़ी देर ठहरी और अंत मे फनी भूषण की कुर्सी की ओर बढ़ी।

अब फनी भूषण ने आँखे खोल दीं। धीमी-धीमी चाँदनी खिड़की से आ रही थी। उसकी दृष्टि के सामने एक ढाँचा, एक हड्डियों का पिंजर खड़ा था। उसके रोम-रोम में छल था, कला ईयों मे कड़े, गले मे माला। सारांश यह कि प्रत्येक जोड़ जड़ाऊ आभूषणो से दमक रहा था। सम्पूर्ण आभूषण ढीले होने के कारण निकले पड़ते थे। नेत्र वैसे ही बड़े बड़े और चमकीले, परन्तु प्रेम भावना से रिक्त थे। अठारहवर्ष पूर्व विवाह की रात

को शहनाइयों के मधुर स्वरो में इन्हीं मोहिनी आँखों से मनी मलिका ने फनी भूषण को पहली बार देखा था। आज वही आँखे वर्षा की भीगी चांदनी में उसके मुख पर जमी हुई थीं।

पिंजर ने दायें हाथ से संकेत किया। फनी भूषण स्वयं चल पड़ने वाली कल की भाँति उठा और पिंजर के पीछे-पीछे हो लिया। हर कदम पर उसकी हड्डियां चटख रही थीं, आभूषण झंकृत हो रहे थे। वह बरामदे से होते हुए, सीढ़ियो से नीचे उतरे और उसी पथ पर हो लिये जो स्नान घाट को जाता था। अंधेरे मे जुगनू कभी-कभी चमक उठते थे। मद्धिम धीमी चाँदनी वृक्षों के गहन पत्तो मे से निकलने के लिए प्रयत्न शील थी।

ये दोनो नदी के तट पर पहुंचे। पिंजर ने सीढ़ियों से नीचे उतरना आरम्भ किया। जल पर चाँदनी का प्रतिबिम्ब नदी की लहरो से क्रीड़ा कर रहा था। पिंजर नदी में कूद पड़ा, उसके पीछे फनी भूषण का पाँव भी नदी मे गया। उसकी स्वप्न की छलना टूटी तो वहाँ कोई न था, केवल वृक्षो की एक पंक्ति चौकीदारी कर रही थी।

अब फनी भूषण के सम्पूर्ण शरीर पर कम्पन छाया हुआ था। फनी भूषण भी एक अच्छा तैराक था, किंतु अब उसके हाथ पांव बस में न थे। दूसरे ही क्षण वह नदी के अथाह जल की तह मे जा चुका था।

इस दर्द से भरे हुए अंत पर स्कूल के अध्यापक ने कथा को समाप्त किया। उसकी समाप्ति पर हमे फिर एक बार शूंय वायुमंडल का अनुभव हुआ। मै भी मौन था। अंधेरे में मेरे मुख से मेरे विचारों का अध्ययन वह न कर सकता था।

'क्या आप इसको कहानी कहते हैं ?' उसने संदेह की मुद्रा मे पूछा।

"नहीं मैं तो इसे सत्य नहीं समझता, प्रथम तो इसका कारण यह है कि मेरी प्रकृति उपन्यास और कहानी लेखन से ऊँची है, और दूसरा कारण यह है कि मैं ही फनी भूषण हूँ।' मैंने बात को काट कर कहा।

स्कूल का अध्यापक कुछ अधिक व्याकुल न था।

"किन्तु आपकी पत्नी का नाम" उसने पूछा।

'नरवदा काली।'

हड्डियों का पिंजर

जब मै पढ़ाई की पुस्तकें समाप्त कर चुका तो मेरे पिता ने मुझे वैद्यक सिखानी चाही, और इस काम के लिए एक संसार के अनुभवी गुरु को नियुक्त कर दिया। मेरा नवीन गुरु केवल देशी वैद्यक मे ही चतुर न था, बल्कि डाक्टरी भी जानता था। उसने मनुष्य के शरीर की बनावट समझने के आशय से मेरे लिये एक मनुष्य का ढांचा अर्थात हड्डियों का पिंजर मंगा दिया था। जो उस कमरे में रखा गया, जहाँ मै पढ़ता था। साधारण व्यक्ति जानते है कि मुर्दा विशेषत हड्डियो के ढाँचे से, कम आयु वाले बच्चो को, जब वे अकेले हो, कितना अधिक भय लगता है। स्वभावतः मुझको भी डर लगता था और आरम्भ मे मै कभी उस कमरे मे अकेला न जाता था। यदि कभी किसी आवश्यकतावश जाना भी पड़ता तो उसकी ओर आँख उठा कर न देखता था। एक और विद्यार्थी भी मेरा सहपाठी था। जो बहुत निभय था। वह कभी भी उस ढाँचे से भयभीत न होता था और कहा करता था कि इस मृत हड्डियों के ढाँचे की सामर्थ्य ही क्या है? जिस से किसी जीवित व्यक्ति को हानि पहुंच सके। अभी हड्डियां है, कुछ दिनों पश्चात मिट्टी हो जायेगी। किंतु मै इस विषय मे उस से कभी सहमत न हुआ

और सर्वदा यही कहता रहा कि यह मैं ने माना कि आत्मा इन हड्डियों से विलग हो गई है, तब भी जब तक यह विद्यमान है वह समय असमय पर आकर अपने पुराने मकान को देख जाया करती है। मेरा यह विचार प्रकट में अनोखा या असम्भव प्रतीत होता था और कभी किसी ने यह नहीं देखा होगा कि आत्मा फिर अपनी हड्डियों मे वापस आई हो। किंतु यह एक अमर घटना है कि मेरा विचार सत्य था और सत्य निकला।

२

कुछ दिनों पहले की घटना है कि एक रात को गृहस्थिक आवश्यकताओं के कारण मुझे उस कमरे में सोना पड़ा। मेरे लिये यह नई बात थी। अतः नींद न आई और मैं काफी समय एक करवटें बदलता रहा। यहाँ तक कि समीप के गिरजाघर ने बारह बजाय। जो लैम्प मेरे कमरे में प्रकाशित था, वह मद्धम होना आरम्भ हुआ और फिर धीरे-धीरे बुझ गया। उस समय मुझे उस प्रकाश के सम्बंध में विचार आया, कि एक क्षण भर पहले वह विद्यमान था किंतु अब सर्वदा के लिये अंधेरे में परिवर्तित हो गया। संसार मे मनुष्य जीवन की भी यही दशा है। जो कभी दिन और कभी रात को अनन्त जीवन मे जा मिलता है।

धीरे-धीरे मेरे विचार हड्डियों के ढाँचे की ओर परिवर्तित होने आरम्भ हुए। मै हृदय में सोच रहा था कि भगवान जाने ये हड्डियां अपने जीवन में क्या कुछ न होंगी। सहसा मुझे ऐसा ज्ञात हुआ जैसे कोई अनोखी वस्तु मेरे पलंग के चहुं ओर

अन्धेरे में फिर रही है। फिर लम्बी सांसों की ध्वनी, जैसे कोई दुखित व्यक्ति साँस लेता है, मेरे कानों में आई और पाँवों की आहट भी सुनाई दी। मैं ने सोचा कि यह मेरा भ्रम है और बुरे स्वप्नो के कारण काल्पनिक आवाजें आ रही हैं। किन्तु पांव की आहट फिर सुनाई दी। इस पर मैंने भ्रम निवारण के हेतू ऊँचे स्वर से पूछा—"कौन है ?" यह सुनकर वह अपरिचित शक्ल मेरे समीप आई और बोली—"मैं हूँ, मैं अपनी हड्डियो को देखने आई हूं।"

मैंने विचार किया मेरा कोई परिचित मुझसे हंसी कर रहा है। इसलिये मैंने कहा—'यह कौन सा समय हड्डियों के देखने का है। वास्तव में तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?"

ध्वनि आई—"मुझे असमय से क्या अभिप्राय ? मेरी वस्तु है, मै जिस समय चाहूँ इसे देख सकती हूँ। आह ! क्या तुम नहीं देखते वे मेरी पसलियां है, जिनमें वर्षों मेरा हृदय रहा है। मै पूरे २६ वर्ष इस घोंसले में बन्द रही, जिस को अब तुम हड्डियों का ढाँचा कहते हो। यदि मै अपने पुराने घर को देखने चली आई तो इसमे तुम्हें क्या बाधा हुई ?"

मैं डर गया और आत्मा को टालने के लिये कहा—"अच्छा तुम जाकर अपनी हड्डियां देख लो मुझे नींद आती है। मै सोता हूँ।" मैंने हृदय में निश्चय कर लिया कि जिस समय वह यहां से हटे, मैं तुरन्त भाग कर बाहर चला जाऊँगा। किंतु वह टलने वाली आसामी न थी। कहने लगी—"क्या तुम यहां अकेले सोते हो ? अच्छा आओ कुछ बाते करें।"

उस का आग्रह मेरे लिये व्यर्थ की विपत्ति से कम न था। मृत्यु की रूप रेखा मेरी आंखों के सामने फिरने लगी। किन्तु विवशता से उत्तर दिया—'अच्छा तो बैठ जाओ और कोई

मनोरंजक बात सुनाओ।'

आवाज आई—"लो सुनो। २५ वर्ष बीते मैं भी तुम्हारी तरह मनुष्य थी, और मनुष्यो मे ही बैठकर बातचीत किया करती थी। किंतु अब श्मशान के सूंय स्थान मे फिरती रहती हूँ। आज मेरी इच्छा है कि मै फिर एक लम्बे समय के पश्चात् मनुष्यो से बाते करूं। मै प्रसन्न हूं कि तुमने मेरी बाते सुनने पर सहमति प्रकट की है। क्यो ? तुम बाते सुनना चाहते हो या नहीं।

यह कह कर वह आगे की ओर आई और मुझे मालूम हुआ कि कोई व्यक्ति मेरे पॉयती पर बैठ गया है। फिर इस से पूर्व कि मै कोई शब्द मुख से निकालूं, उसने अपनी कथा सुनानी आरम्भ कर दी।

: ३ :

वह बोली—"महाशय जब मैं मनुष्य के रूप मे थी तो केवल क व्यक्ति से डरती थी, और वह व्यक्ति मेरे लिए मानो मृत्यु ना देवता था। वह था मेरा पति। जिस प्रकार कोई व्यक्ति मछली को कॉटा लगाकर पानी से बाहर ले आया हो। वह व्यक्ति मुझ को मेरे माता-पिता के घर से ले आया था और मुझ को वहॉ जाने न देता था। अच्छा है उसका काम जल्दी ही समाप्त हो गया अर्थात् विवाह के दूसरे महीने ही वह संसार से चल बसा। मैंने लोगों की देखा देखी-वैष्णव रीति से क्रिया कर्म किया। किन्तु हृदय मे बहुत प्रसन्न थी कि कांटा निकल गया। अब मुझ को अपने माता-पिता से मिलने की आज्ञा मिल जाएगी और मै अपनी पुरानी सहेलियो से, जिन के साथ खेला करती थी,

मिलूंगी। किंतु अभी मुझ को मैके जाने की आज्ञा न मिली थी, कि मेरा ससुर घर मे आया और मेरा मुख ध्यान से देख कर अपने आप से कहने लगा—"मुझ को इस के हाथ और पांव के चिन्ह देखने से मालूम होता है यह लड़की डायन है।' अपने ससुर के ये शब्द मुझ को अब तक याद है। वे मेरे कानो मे गूंज रहे हैं। इस के कुछ दिनो पश्चात् मुझे अपने पिता के यहां जाने की आज्ञा मिल गई। पिता के घर जाने पर मुझे जो खुशी प्राप्त हुई वह वर्णन नहीं की जा सकती। मै वहाँ प्रसन्नता से रहने और अपने यौवन के दिन व्यतीत करने लगी। मैने उन दिनों अनेको बार अपने विषय मे लोगों को कहते सुना कि मै सुन्दर युवती हूं। परन्तु तुम कहो तुम्हारी क्या सम्मति है?"

मैंने उत्तर दिया—"मैने तुम्हे जीवित देखा नही, मै कैसे सम्मति दे सकता हूँ. जो कुछ तुमने कहा ठीक होगा।"

वह बोली—"मै कैसे विश्वास दिलाऊँ कि इन दो गढ़ो में लज्जाशील दो नेत्र, देखने वालों पर बिजलियां गिराते थे। खेद है कि तुम मेरी वास्तविक मुस्कान का अनुमान इन हड्डियों के खुले मुखड़े से नहीं लगा सकते। इन हड्डियो के चहुं ओर जो सौंदर्य था अब उसका नाम तक बाकी नहीं है। मेरे जीवन के क्षणो मे कोई योग्य से योग्य डाक्टर भी कल्पना न कर सकता था कि मेरी हड्डियां मानव शरीर की रूप रेखा के वर्णन के काम आयेगी। मुझे वो दिन याद है जब मैं चला करती थी तो प्रकाश की किरणे मेरे एक-एक बाल से निकल कर प्रत्येक दिशा को प्रकाशित करती थी। मै अपनी बाहों को घण्टों देखा करती थी। आह—यह वो बाहे थी, जिसको मैंने दिखाई अपना और आसक्त कर लिया। सम्भवतः सुभद्रा को भी ऐसी बाहे नसीब

न हुई होगी। मेरी कोमल और पतली उँगलियाँ मृणाल को भी लजाती थीं। खेद है कि मेरे इस नग्न ढाँचे ने तुम्हे मेरे सौंदर्य के विषय मे सर्वथा झूठी सम्मति निर्धारित करने का अवसर दिया। तुम मुझे यौवन के क्षणो मे देखते तो आँखो से नींद उड़ जाती और वैद्यक ज्ञान का सौदा मस्तिष्क से अशुद्ध शब्द की भाँति समाप्त हो जाता।

मैंने उत्तर दिया—"विश्वास मानो तुम्हारे इस वार्तालाप से वैद्यक की सारी जानकारी मेरे मस्तिष्क से निकल गई है और तुम्हारा मोहक सौंदर्य मेरे हृदय पर अंकित हो गया है। अब आगे कहो।"

उसने कहानी का तारतम्य प्रवाहित रख कर कहा—"मेरे भाई ने निश्चिय कर लिया था कि वह विवाह न करेगा। अतः घर मे मै ही एक स्त्री थी। मै संध्या समय अपने उद्यान मे छाया वाले वृक्षों के नीचे बैठती तो सितारे मुझे घूरा करते। और शीतल वायु जब मेरे समीप से गुजरती तो मेरे साथ अठ-खेलियां करती थी। मैं अपने सौंदर्य पर घमंड करती और अनेको बार सोचा करती कि जिस पृथ्वी पर मेरा पांव पड़ता है यदि उसमे अनुभव करने की शक्ति होती तो प्रसन्नता से फूली न समाती। कभी कहती संसार के सम्पूर्ण प्रेमी युवक घास के रूप में मेरे पाँव पर पड़े हैं। अब ये सम्पूर्ण विचार मुझ को अनेक बार विकल करते है कि आह क्या था और क्या हो गया।

मेरे भाई का एक मित्र सतीश कुमार था। जिस ने मैडीकल कालेज से डाक्टरी का प्रमाण पत्र प्राप्त किया था। वह हमारा भी घरेलू डाक्टर था। वैसे उसने मुझ को नहीं देखा था परन्तु मैं ने उसको एक दिन देख ही लिया और मुझे यह कहने में भी

संकोच नहीं कि उसकी सुन्दरता ने मुझ पर विशेष प्रभाव डाला। मेरा भाई अजीब ढंग का व्यक्ति था। संसार के शीत-ग्रीष्म से सर्वथा अपरिचित। वह कभी गृहस्थ के कामो मे हस्ताक्षेप न करता। वह मौनप्रिय और एकान्त मे रहा करता था। जिस का परिणाम यह हुआ कि संसार से अलग हो कर एकान्त-प्रीय बन गया और साधु-महात्माओ का-सा जीवन बिताने लगा।

हां तो वह नवयुवक सतीश कुमार हमारे यहाँ प्रायः आता। और यही एक नवयुवक था जिस को अपने घर के पुरुषों के अतिरिक्त मुझे देखने का संयोग प्राप्त हुआ था। जब मैं उद्यान मे अकेली होती और पुष्पों से लदे हुए वृक्ष के नीचे महारानी की भाँति बैठती, तो सतीश कुमार का ध्यान और भी मेरे हृदय मे चुटकियाँ लेता—"परन्तु तुम, किस चिन्ता मे हो। तुम्हारे हृदय मे क्या बीत रही है?"

मैने ठंडी उंसास भर कर उत्तर दिया—"मैं यह विचार कर रहा हूँ कि कितना अच्छा होता कि मैं ही सतीश कुमार होता।"

वह हंस कर बोली—"अच्छा पहिले मेरी कहानी सुन लो फिर प्रेमालाप कर लेना। एक दिन वर्षा हो रही थी, मुझे कुछ बुखार था कि उस समय डाक्टर अर्थात् मेरा प्रिय सतीश मुझे देखने के लिये आया। यह प्रथम अवसर था कि हम दोनो ने एक दूसरे को आमने-सामने देखा और देखते ही डाक्टर मूर्ति समान स्थिर-सा हो गया और मेरे भाई की मौजूदगी ने होश संभालने के लिये उसे बाध्य कर दिया। वह मेरी ओर संकेत करके बोला—मै इन की नब्ज देखना चाहता हूं। मैने धीरे से अपना हाथ दुशाले से निकाला। डाक्टर ने मेरी नब्ज पर हाथ रखा। मैने कभी न देखा था कि किसी डाक्टर ने साधारण ज्वर के

निरीक्षण में इतना विचार किया हो। उसके हाथ की उंगलियाँ काँप रही थीं। कठिन परिश्रम के पश्चात् उसने मेरे ज्वर को अनुभव किया। किंतु वह मेरा ज्वर देखते-देखते स्वयं ही बीमार हो गये। क्यों तुम इस बात को मानते हो या नहीं ?"

मैंने डरते-डरते कहा—"हाँ, बिल्कुल मानता हूं। मनुष्य की अवस्था में परिवर्तन उत्पन्न होना कठिन है ?"

वह बोली—"कुछ दिनो परीक्षण करने से ज्ञात हुआ कि मेरे हृदय में डाक्टर के अतिरिक्त और किसी नवयुवक का विचार तक नहीं। मेरा कार्यक्रम था सन्ध्या समय बासन्ती रग की साड़ी पहन कर बालों मे कंघी करके, फूलो का हार गले मे डालकर, दर्पण हाथ में लिये बाग मे चली जाती और पहरों देखा करती। क्यों क्या दर्पण देखना बुरा है ?"

मैने घबराकर उत्तर दिया।"—नहीं तो।"

उसने कहानी का सिलसिला कायम रखते हुए कहा—दर्पण देख कर मै ऐसा अनुभव करती थी जैसे मेरे दो रूप हो गये है अर्थात् मै स्वयं हीं सतीश कुमार बन जाती और स्वयं ही अपने प्रतिबिम्ब को प्रेमिका समझ कर उस पर तनमन न्योछावर करती। यह मेरा बहुत ही प्रिय मनोरंजन था और मैं घंटों इस मे व्यतीत कर देती। अनेकों बार ऐसा हुआ कि मध्यान्ह को पलग पर बिस्तर बिछा कर और एक हाथ को बिस्तर पर उपेक्षा से फेंक दिया। जरा आँख झपकी तो सपने मे देखा कि सतीश कुमार आया और मेरे हाथ को चूम कर चला गया......बस अब मै कहानी समाप्त करती हूँ, तुम्हे तो नींद आ रही है।"

मेरी उत्सुकता बहुत बढ़ चुकी थी। अतः मैंने नम्रता भरे स्वर मे कहा—"नहीं तुम कहे जाओ,मेरी जिज्ञासा बढ़ती जाती है

वह कहने लगी—"अच्छा सुनो ! थोड़े दिनों मे ही सतीश कुमार का कारोबार बहुत बढ़ गया और उसने हमारे मकान के नीचे के भाग में अपनी डिस्पेन्सरी खोल ली। जब उसे रोगियों से अवकाश मिलता तो मै उसके पास जा बैठती और हंसी-ठट्ठों में विभिन्न दवाओं का नाम पूछती रहती। इस प्रकार मुझे ऐसी दवाये भी ज्ञात हो गई', जो विषैली थीं। सतीश कुमार से जो कुछ मै मालूम करती वह बड़े प्रेम और नम्रता से बताया करता इस प्रकार एक लम्बा समय बीत गया और मैंने अनुभव करना आरम्भ किया कि डाक्टर होश हवास खोये सा रहता है। और जब कभी मैं उसके सम्मुख जाती हूं तो उसके मुख पर मुर्दनी सी छा जाती है। परन्तु ऐसा क्यो होता है ? इसका कोई कारण ज्ञात न हुआ। एक दिन डाक्टर ने मेरे भाई से गाड़ी मांगी। मैं पास बैठी थी। मैंने भाई से पूछा—डाक्टर इस समय रात में कहां जायेगा ? मेरे भाई ने उत्तर दिया--"तवाह होने को।" मैंने अनुरोध किया कि मुझे अवश्य बताओ वह कहाँ जा रहा है ? भाई ने कहा—वह विवाह करने जा रहा है।" यह सुन कर मुझ पर मूर्छा सी छा गई। किंतु मैंने अपने आप को सभाला और भाई से फिर पूछा—क्या वह सचमुच विवाह करने जा रहा है या मजाक करते हो ? उसने उत्तर दिया—"सत्य है, आज डाक्टर दुल्हन लायेगा ?"

"मै वर्णन नहीं कर सकती कि यह बात मुझे कितनी कष्टप्रद अनुभव हुई। मैंने अपने हृदय से बार-बार पूछा कि डाक्टर ने मुझ से यह बात क्यो छुपा कर रखी। क्या मैं उसको रोकती कि विवाह मत करो ? इन पुरुषों की बात का कोई विश्वास नहीं।

"मध्यान्ह डाक्टर रोगियों को देख कर डिस्पेन्सरी मे आया

और मैने पूछा—"डाक्टर साहब क्या यह सत्य है कि आज आप का विवाह है ?" यह कह कर मै बहुत हसी और डाक्टर यह देखकर कि मै इस बात को हसी मे उड़ा रही हूँ, न केवल लज्जित हुआ बल्कि कुछ चिन्तित सा हो गया । फिर मैने सहसा पूछा "डाक्टर साहब जब आप का विवाह हो जायगा तो क्या आप फिर भी लोगों की नब्ज देखा करेंगे ? आप तो डाक्टर है और अन्य डाक्टरों की अपेक्षा प्रसिद्ध भी है कि आप शरीर के सम्पूर्ण अंगो की दशा जानते है, किन्तु खेद है कि आप डाक्टर होकर किसी के हृदय का पता नही लगा सकते कि वह किस दशा मे है । वस्तुतः हृदय भी शरीर का भाग है ।"

मेरे शब्द डाक्टर के हृदय में तीर की भांति लगे । परन्तु वह मौन रहा ।

: ४ :

"लगन का मुहूर्त्त बहुत रात गये निश्चित हुआ था और बारात देर से जानी थी । अतः डाक्टर और मेरा भाई प्रतिदिन की भाँति शराब पीने बैठ गये । इस मनोविनोद मे उनको बहुत देर हो गई ।"

"ग्यारह बजने को थे कि मै उनके पास गई और कहा—"डाक्टर साहब ग्यारह बजने वाले है आप को विवाह के लिए तैयार होना चाहिए ।" वह किसी सीमा तक सुरूर मे हो गया था । बोला—"अभी जाता हूं ।" फिर वह मेरे भाई के साथ बातों में तल्लीन हो गया और मैंने अवसर पाकर विष की पुड़िया, जो मैंने दोपहर को डाक्टर की अनुपस्थिति मे उसकी आलमारी मे निकाली थी शराब के गिलास मे, जो डाक्टर के सामने रखा

हुआ था, डाल दी। कुछ क्षणों पश्चात् डाक्टर ने अपना गिलास खाली किया और दुल्हा बनने को चला गया। मेरा भाई भी उसके साथ चला गया।"

"मैं अपने दो मंजिले कमरे मे गई और अपना नया बनारसी दुपट्टा ओढ़ा, मांग में सिन्दूर भरा पूरी सुहागन बन कर उद्यान में निकली। जहाँ प्रतिदिन सन्ध्या समय बैठा करती थी। उस समय चाँदनी छिटकी हुई थी, वायु में कुछ सिहरन उत्पन्न हो गई थी और चमेली की सुगन्ध ने उद्यान को महका दिया था। मैंने पुड़िया की शेष दवा निकाली और मुख मे डालकर एक चुल्लू पानी पी लिया। थोड़ी देर मे मेरे सिर मे चक्कर आने लगे, आँखो मे धुन्धलापन छा गया। चाँद का प्रकाश मद्धम होने लगा और पृथ्वी तथा आकाश, बेल-बूटे, मेरा घर जहाँ मैंने अब तक आयु बिताई थी, धीरे-धीरे लुप्त होते हुए ज्ञात हुए। और मैं मीठी नींद सो गई।"

डेढ़ साल के पश्चात सुख-स्वप्न से चौंकी तो मैंने क्या देखा कि तीन विद्यार्थी मेरी हड्डियों से डाक्टरी शिक्षा प्राप्त कर रहे है और एक अध्यापक मेरी छाती की ओर बेत से सकेत करके लड़कों को विभिन्न हड्डियो के नाम बता रहा है और कहता है—'यहाँ हृदय रहता है, जो विवाह और दुख के समय धड़का करता है और यह वह स्थान है जहाँ उठती जवानी के समय फूल निकलते है।' अच्छा अब मेरी कहानी समाप्त होती है। मैं विदा होती हूं, तुम सो जाओ।"

———

मौन सौन्दर्य

जिस समय लड़की का नाम शोभा रखा गया तो कौन कह सकता था कि वह बड़ी होकर अभागी सिद्ध होगी। वह यद्यपि बोलने की शक्ति से वंचित थी, तब भी नासमझ न थी। वह इस बात को समझती थी कि भगवान ने उसे अपने माता पिता के घर निरादर और अपमान के लिये भेजा है। इसलिये सर्वसाधारण से दूर रहने का प्रयत्न करती थी। वह जवान हो गई थी। इस कारण माता पिता रात दिन चिन्तित रहा करते थे। विशेषत. उसकी माता बहुत उद्विग्न दृष्टि से उसे देखती थी। माँ को बेटे की अपेक्षा बेटी से अधिक स्नेह हुआ करता है। उसमे यदि कोई ऐब हो तो वह इस से अपना अपमान अनुभव करती है। शोभा के पिता रामप्रसाद अन्य बेटियों की अपेक्षा उस से अधिक प्रेम करते थे। परन्तु उसकी माँ उसे अपने शरीर का एक कुरुप चिन्ह अनुभव करती थी। यदि शोभा मे बोलने की शक्ति न थी तो क्या उसके पास बड़े काले नेत्र भी न थे। जिस समय कोई विचार उसके मस्तिष्क में उत्पन्न होता तो उसके होंठ स्वयं ही हिलने लगते।

जब हम अपने विचार प्रकट करते और बोलते है तो उसके प्रारम्भ के लिए शब्दों का निर्वाचन करना कोई सरल काम नहीं

होता। विचार प्रकट करने का ढंग हुआ करता है जो प्रायः ग़लत भी होता है। इस में पड़कर प्रायः हम भी अशुद्धि कर जाते हैं। किन्तु काले नेत्र तो किसी बात को प्रकट करने के लिए शब्दो के आश्रित नहीं हुआ करते।

मस्तिष्क स्वयं उन पर परछाई डालता है और उन में विचारों की झलक प्रकट होकर लुप्त हो जाती है। विचार पुतलियों की कालिख से इस प्रकार प्रकट होता है जिस प्रकार अस्त होने वाला सूर्य या बादलों के बीच चमकने वाली बिजली।

जो मनुष्य जन्म से केवल ज़बान हिलाने के और कोई दूसरी बोलने की शक्ति नहीं रखते, वह आँखो से ज़बान का काम लिया करते हैं। जिनकी प्रकट करने की शक्ति अथाह समुद्र की भांति हुआ करती है और जिन मे प्रातः सायं प्रकाश अन्धकार मे लुप्त हो जाता है। मानो गूंगों मे प्रकृति का एक सुन्दर मौन भाव छुपा हुआ रहता है।

शोभा चाँदीपुर के एक साधारण छोटे से मकान में रहा करती थी। नदी के किनारे-किनारे बस्ती चली गई थी। उसके दोनो ओर छाया वाले वृक्ष थे। इस प्रकार उगे हुए वृक्षो के कारण मानो नदी की सुन्दर देवी अपने राज सिंहासन से उतर कर सुन्दर उपवन की स्वामिनी बन गई थी। उसका प्रवाह अपने आप से बेख़बर अपनी कार्य-पूर्ति मे तल्लीन रहता और वह नदी प्रत्येक से दुवाएं लेती। रामप्रसाद का मकान उस नदी की ओर बस्ती से निकला हुआ था और नौका मे बैठने वालो को बस्ती की हर एक झोपड़ी और मकानो का प्रत्येक भाग स्पष्ट दिखाई देता। मालूम नहीं इस सांसारिक धन सम्पत्ति के बीच उस छोटी लड़की का भी किसी को ध्यान था या नहीं। जो

अपना काम पूरा करके चुपके से किनारे पर आ बैठती और प्रकृति की मौनता से बातें करती रहती थी।

उस स्थान पर झरने के प्रवाह की आवाज, गाँव के निवासियों का शोर गुल, नाविकों के मधुर अलाप और पत्तियों की खड़खड़ाहट परस्पर मिलकर उसके हृदय को उद्विग्न कर जाती। यही शोर गुल और प्रकृति की अनेक-रूपता उस लड़की की बोली थी, काली आँखें ज़बान थी, जिन पर लम्बी-लम्बी पलकें छाया किये हुए थीं और यही शोर-गुल उसके समीप दुनिया वालो की ज़बान थी।

उस स्थान पर शोभा के पास वृक्षों की चोटियो से लेकर मौन तारो तक रुलाने और ठण्डी साँसे भरने की सामग्री प्राप्त थी।

ठीक मध्याान्ह समय जब नाविक और मछिहारे भोजन करने के लिये चले जाते, जब गाँव वाले सो जाते, चिड़ियां मौन हो जातीं, घाटियों पर शून्यता छा जाती, संसार थक कर चुप हो जाता और एकान्त एक भयावना रूप धारण कर लेता, उस समय ऊंचे आकाश के नीचे यह गूंगी लड़की किसी छोटे से वृक्ष की छाया मे बैठ जाती।

शोभा सहेलियों से वंचित थी। उसके घर मे दो गाये थीं। उन दोनो गायों ने शोभा के मुँह से अपना नाम कभी न सुना था। इतना होने पर भी उसके पाँव की आहट को भली भांति पहचान लिया करती थी। यह माना कि उनके पास जबान न थी, किन्तु उसके संकेतों से वे इतनी प्रभावित होती थी जितना कि एक वृद्ध मनुष्य से भी न हो सकती थी। शोभा उन तक आती और उनकी गर्दन में अपनी दोनो बाहें डाल दिया करती थी। अपने कोमल कपोलों को उनकी थूथनियों में मला करती।

शोभा कम से कम तीन बार उन्हें प्रतिदिन देखने आती और अधिक से अधिक जितनी बार हो सके। जब उसे कोई बुरा भला कहता तो वह अपने उन गूंगे साथियों के पास चली जाती। चाहे वह समय उसके आने का हो या न हो और गायें उसकी आत्मा की पीड़ा और मूक जीवन का अपने हृदय पर प्रभाव अनुभव करती। उसके समीप आकर वे अपने सींग आहिस्ता आहिस्ता उसके हाथों से रगड़ती रहती और अपनी विकलता तथा अपने मूक ढंगों से उसकी चिन्ता दूर करने का प्रयत्न करती।

: २ :

गायों के अतिरिक्त उस घर में कुछ बकरियाँ और एक बिल्ली का बच्चा भी था। परन्तु वह उनसे इतना प्रेम नक रती थी। वैसे वे सब उसे वैसी ही दृष्टि से देखा करते थे। दिन और रात मे जब भी बिल्ली का बच्चा अवसर पाता उसकी गोद में आकर लेट जाता और जब शोभा अपनी ऊंगलियाँ उसकी पीठ और गर्दन पर फेरती तो वह सो जाता।

मनुष्यों की दुनियाँ में भी शोभा का एक मित्र था। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उसके सम्बन्ध उसके साथ किस प्रकार के थे।

शोभा के साथी के पास बोलने की शक्ति थी और उसकी आवाज़ शोभा की मूकवक्तृता को भी किसी समय छीन लेती। शोभा का यह साथी गोसाईं का छोटा लड़का प्रताप था। जो इन दिनों बेकार था और उस के माता-पिता की आशाएं आजीविका अर्जन के सम्बन्ध में उसकी ओर से समाप्त हो चुकी थी।

बेकार मनुष्य अपने प्रियों को अप्रसन्न करके दूसरे व्यक्तियों में प्रिय हो जाया करते हैं और चूंकि उनके पास कोई काम नहीं होता अतः वे सर्व-साधारण की सम्पत्ति हो जाते हैं। जिस प्रकार एक नगर को एक खुले हुए मैदान की आवश्यकता होती है, ताकि रहने वाले सुख की सांस ले सकें, उसी प्रकार एक गांव को कुछ बेकार व्यक्तियों की भी आवश्यकता होती है। ताकि धनवान् अपना बेकार समय उनकी गप्प बाजी यानि कपोल कल्पनाओं में व्यतीत कर सकें।

प्रताप का विशेष व्यसन मछलियां पकड़ना था। इस व्यसन में वह अपना बहुत सा समय नष्ट करता और प्रतिदिन मध्यान्ह के लगभग उसमें तल्लीन पाया जाता।

अपने इसी व्यसन के कारण वह शोभा से परिचय प्राप्त कर सका। चाहे वह कुछ भी करता हो परन्तु एक मित्र का मूल्य समझता था। प्रताप शोभा की मूकता के कारण उसका बहुत सम्मान करता था और प्रायः उसकी प्रतीक्षा मे रहता था।

शोभा प्रतिदिन इमली के वृक्ष के नीचे बैठा करती और प्रताप ज़रा दूर हटकर अपनी डोर डाले रहता। प्रतिदिन वह अपने साथ कुछ पान लाया करता था जिनको शोभा इमली के वृक्ष के नीचे बैठी हुई बनाया करती थी।

देर तक बैठे रहने और यह स्थिति देखने के बीच शोभा की यह उत्कट अभिलाषा होती थी कि वह अपने आप को प्रताप का किसी प्रकार सहायक सिद्ध कर दे। साथ मे यह भी सिद्ध कर दे कि वह इस ससार पर व्यर्थ का बोझा नहीं है किन्तु वहाँ इस भाव प्रकट करने की कोई सामग्री ही उपस्थित न थी। वह भगवान् से एक अपूर्व शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करती, ताकि वह अपनी करामात से प्रताप को चकित कर सके और

फिर वह प्रताप की जबान से यह शब्द सुन सके—"मुझे सपने में भी इस बात की कल्पना न थी कि मेरी शोभा ऐसा कर सकेगी।

यदि शोभा अप्सरा होती तो वह नदी में गोता लगाकर एक मछली की अपेक्षा प्रताप के लिये बहुत से जवाहरात ले आती और तब प्रताप शिकार छोड़ कर ऊपर से नीचे तक आश्चर्य की प्रतिमा बन जाता। उस समय शोभा हीरे जवाहर से चमकने वाले शहर के बादशाह की बेटी मालूम होती। परन्तु ऐसा न हो सका, क्योंकि असम्भव था। वैसे असम्भव तो वास्तव में कोई काम नहीं ''किंतु कठिनाई तो यह थी कि वह किसी भी राज्य परिवार में पैदा न हुई थी, बल्कि एक निर्धन परिवार की पुत्री थी और इस कारण गोस्वामी के लड़के प्रताप को आश्चर्य-चकित करने का कोई साधन न पाती थी।

शोभा जवान होती गई और धीरे-धीरे अपने आप को जानती गई। इसी बीच में एक अकथनीय विचार समुद्र के तट से उठने वाले लहरों की भांति, जब कि पूर्ण चन्द्रमा होता उस के मस्तिष्क में उत्पन्न होता और वह अपने आप को ऊपर से नीचे तक देखती और विचार करती। किन्तु वह ऐसा कोई उत्तर न पाती थी जिसे वह समझ न सकती हो।

एक दिन रात को जब बहुत देर पश्चात् पूर्ण चन्द्रमा प्रकट हुआ था उसने अपने मकान का द्वार ज़रा धीरे-धीरे और डरते हुए बाहर झाँकने के लिये खोला। बाहर झाँका तो उस समय प्रकृति भी शोभा की भांति अकेली आकाश की ओर देख रही थी।

: ३ :

शोभा का व्यवस्थित, दृढ़ और युवा जीवन उसकी यह दशा देख कर उद्विग्न हो उठा और चिन्ता तथा दुख से उसके हृदय का प्याला भर गया। पहले भी वह अकेली थी। किन्तु इस एका की दशा ने उसके विचार को भी दृढ़ बना दिया। उस समय उसका हृदय और अधिक भारी हो गया। वह जबान से एक शब्द भी न निकाल सकी।

शोभा के विवाह की चिन्ता ने उसके माता-पिता को बहुत बड़ी कठिनाई में डाल दिया था। क्योंकि बिरादरी वाले प्रायः उनको बुरा भला कहते और बिरादरी से निकाल देने का भय दिखाते। आखिर दुखी होकर रामप्रसाद ने अपनी पत्नी से कहा—"हम को कलकत्ते चले जाना चाहिये।" और इस निश्चय के पश्चात वह एक अपरिचित स्थान पर जाने के लिये तैयार हो गये। यह देखकर शोभा का हृदय भर आया, नेत्र अश्रुओं से भर गये। इन तमाम बातो के बीच एक दिन मध्यान्ह प्रताप शिकार करते-करते शोभा से कहने लगा—"तुम्हारे पिता ने तुम्हारा वर खोज लिया है और अब कुछ ही दिनों में तुम्हारा विवाह होने वाला है। देखो! तुम मुझे बिल्कुल ही न भुला जाना' यह कह कर वह अपने काम में संलग्न हो गया।

जिस प्रकार भयभीत हरिनी अपने शिकारी का मुख निहारती रहती है और अपनी मूक पीड़ा मे पूछती है कि मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। इस प्रकार शोभा प्रताप की ओर देखती रही और वह उस दिन अधिक समय तक न बैठी।

शोभा का पिता रामप्रसाद अपने शयनकक्ष मे बैठा हुक्का

पी रहा था कि शोभा ने उसे देख कर रोते हुए अपने आप को उसके पांव पर ला डाला। रामप्रसाद ने उसे सॉत्वना देनी चाही किन्तु उसके कपोल भी अश्रुओं से भीग गए।

अन्त में यह निश्चय किया कि दूसरे दिन प्रातः काल कलकत्ते को चले जाना चाहिए। शोभा ने अपने पुराने मित्र गायों के समीप आकर विदा ली, एक बार फिर उनको अपने हाथों से खिलाया पिलाया, उनको गले से लगाया, और उनके मुखों को ध्यान से देखा। उस समय उसकी व आँखे जो कि जवान का काम देती थीं, तीव्रता से अश्रु बहाने लगीं। जिस रात की यह घटना है, वह चॉद की दस तारीख थी।

: ४ :

शोभा अपने कमरे से निकल कर नदी तट पर आ लेटी और अपने दोनों हाथ पृथ्वी पर इस प्रकार फैला दिये जैसे वह अपनी निर्दयी माँ से कह रही हो—"माँ मुझे प्रताप से अलग न होने दो।"

एक दिन कलकत्ते के किसी मकान में शोभा की मां ने शोभा को बड़ी सावधानी से कपड़े पहनाए, उसके केश गूंथे, आभूषणों से सजाया और उसके सौंदर्य को चमकाने का बहुत प्रयत्न किया यह सब देखकर शोभा के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। उस की माँ ने सोचा कि सम्भवतः यह दुखित है।

इस बीच में वर वधु को देखने के लिए अपने मित्रों सहित आया। शोभा के माता-पिता चिन्तित थे कि देखो ये देवता शोभा को पसन्द करता है या नहीं। निर्वाचित वर के सन्मुख भेजने से पूर्व शोभा की माँ शोभा को मूक रहने की चेतावनी

दे चुकी थी। परन्तु उस पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह विकल थी। वर ने काफी समय तक ऊपर से नीचे तक शोभा को निरखा परखा और केवल यह कहा--"ऐसी विशेष बुरी भी नहीं।"

उसने उसके रोने पर ध्यान दिया और सोचा कि संभवतः यह उसके कोमल हृदय होने का प्रमाण है। अश्रुओं ने शोभा का महत्व और भी बढ़ा दिया। वर ने उसमें कोई कमी न पाई। अन्त में एक शुभ दिन विवाह के लिये निश्चित हुआ और विवाह हो गया। इसके पश्चात शोभा के माता-पिता अपने देश वापस आ गये। उन्होने भगवान का आभार माना कि वह समाज तथा संसार की बुराई से बच गए। कुछ दिनो पश्चात वर को मालूम हुआ और सब को मालूम हो गया कि वधु गूंगी है। यदि एक आध व्यक्ति को इस की खबर न हुई तो इस में शोभा का क्या दोष था। उसने तो किसी को भी धोखा देने का प्रयत्न किया न था।

वह प्रत्येक पर दृष्टि डालती, परन्तु कोई उस की बात न समझ सकता था। आह, बचपन से जो उसकी बोली को समझते थे वो उसके पास न थे। परन्तु खेद है यदि उसके माता-पिता उसकी भावनाओ को समझते और उसका हाथ प्रताप के हाथो मे सौंप देते तो कितना अच्छा होता। मूक सौंदर्य को भी सम्मान प्राप्त हो जाता।

कवि का हृदय

चाँदनी रात में भगवान विष्णु बैठे मन ही मन में गुनगुना रहे थे—

"मैं विचार किया करता था कि मनुष्य सृष्टि को सब से सुन्दर निर्माण है। किन्तु मेरा विचार भ्रामक सिद्ध हुआ। कमल के उस फूल को, जो वायु के झोंका से हिलता है, मै देख रहा हूँ कि वह सम्पूर्ण जीव मात्र से कितना अधिक पवित्र और सुन्दर है। उसकी पखुड़ियाँ अभी-अभी प्रकाश से खिली है। वह ऐसा आकर्षक है कि मै अपनी दृष्टि उस पर से नही हटा सकता। हाँ, मानवों मे इसके समान कोई वस्तु विद्यमान नहीं।"

विष्णु भगवान् ने एक दीर्घ ठंडी साँस खींची। उसके एक क्षण पश्चात सोचने लगे।

"आखिर किस प्रकार मुझ को अपनी शक्ति से एक नवीन अस्तित्व उत्पन्न करना चाहिये, जो मनुष्यों मे ऐसा हो जैसा कि फूलों मे कमल है। जो आकाश और पृथ्वी दोनों के लिये सुख तथा प्रसन्नता का कारण बने। ऐ कमल! तू एक सुन्दर युवती के रूप में परिवर्तित हो जा और मेरे सामने खड़ा हो।"

जल मे एक हल्की सी लहर उत्पन्न हुइ, जैसे कृष्णा चिड़िया के पंखों से प्रकट होती है। रात अधिक प्रकाशमान हो गई

चाँद पूरी चमक के साथ चमकने लगा। परन्तु कुछ समय पश्चात् सहसा सब मौन हो गये, जादू पूरा हो गया। भगवान के सम्मुख कमल मानवी रूप में खड़ा था।

वह ऐसा सुन्दर रूप था कि स्वयं देवता को भी देख कर आश्चर्य हुआ। उस रूपवती को सम्बोधित करके विष्णु भगवान बोले—"तुम इससे पहले सरोवर का फूल थीं, अब मेरी कल्पना का फूल हो, बातें करो।"

सुन्दर युवती ने बहुत धीरे से बोलना आरम्भ किया। उस का स्वर ठीक ऐसा था जैसे कमल की पंखड़ियां प्रातः समीरण के झोंकों से बज उठती हैं।

"महाराज आपने मुझको मानवी रूप मे परिवर्तित किया है, कहिये अब आप मुझे किस स्थान मे रहने की आज्ञा देते है। महाराज पहले मै पुष्प थी तो वायु के थपेड़ो से डरा करती थी और अपनी पंखुड़ियाँ बन्द कर लेनी थी। मै वर्षा और आंधी से भय मानती थी, बिजली और उसकी कड़क से मेरे हृदय को डर लगता था, मै सूर्य की जलानेवाली किरणो से डरा करती थी, आपने मुझ को कमल से इस अवस्था मे बदला है अतः मेरी पहले सी प्रकृति है। मै पृथ्वी से और जो कुछ उस पर विद्यमान है, उससे डरती हूँ। फिर आज्ञा दीजिये मुझे कहां रहना चाहिये?"

विष्णु ने तारों की ओर दृष्टि की, एक क्षण तक कुछ सोचा, उसके बाद पूछा—"क्या तुम पहाड़ों की चोटियों पर रहना चाहती हो?"

"नहीं महाराज वहाँ बर्फ है और मै शीत से डरती हूं।"

"अच्छा मै सरोवर की तह में तुम्हारे लिये शीशे का महल बनवा दूँगा।"

जल की गहराइयों में सर्प और भयावने जन्तु रहते हैं इस लिये मुझे डर लगता है।"

"तो क्या तुम को सुनसान उजाड़ स्थान रुचिकर है?"

"नहीं महाराज वन की तूफानी वायु और बिजली की भयावनी कड़क को मैं किस प्रकार सहन कर सकती हूं।"

"तो फिर तुम्हारे लिए कौन सा स्थान निश्चित किया जाए? हाँ, अजन्ता की गुफाओं में साधु रहते हैं क्या तुम सब से अलग किसी गुफा मे रहना चाहती हो?"

"महाराज वहाँ बहुत अन्धेरा है, मुझे डर लगता है।"

भगवान विष्णु घुटने के नीचे हाथ रख कर एक पत्थर पर बैठ गये। उनके सामने वही सुन्दरी सहमी हुई खड़ी थी।

: २ :

काफी समय के पश्चात जब प्रातः की उषा किरण के प्रकाश ने पूर्व दिशा में आकाश को प्रकाशित किया, जब सरोवर का जल, ताड़ के वृक्ष और हरे बाँस सुनहरे हो गये, गुलाबी बंगले, नीले सारस, और श्वेद हँस मिल कर पानी पर और मोर जंगल में कूकने लगे तो उसके साथ ही वीणा की मस्त कर देने वाली लय से मिश्रित प्रेमगान सुनाई देना आरम्भ हुआ। भगवान अब तक संसार की चिंता मे सलग्न थे अब चौंके और कहा— "देखो कवि वाल्मीकि सूर्य को नमस्कार कर रहा है।"

कुछ समय पश्चात् वे केसरिया पर्दे जो चाँदनी को ढंके हुए थे उठ गये और सरोवर के समीप कवि वाल्मीकि प्रकट हुए। मनुष्य के रूप मे बदले हुए कमल के फूल को देख कर उन्होंने वाद्ययन्त्र बजाना बन्द कर दिया। वीणा उनके हाथों से

गिर पड़ी, दोनों हाथ जंघाओ पर जा लगे। वह खड़े के खड़े रह गये। जैसे सर्वथा किमकर्तव्य विमूढ़ थे।

भगवान ने पूछा—"वाल्मीकि क्या बात है! मौन क्यों हो गये?"

वाल्मीकि बोले—"महाराज आज मैंने प्रेम का पाठ पढ़ा है।" बस इससे अधिक कुछ न कह सके।

विष्णु भगवान का मुख सहसा चमक उठा। उन्होंने कहा—"सुन्दर कामिनी! मुझ को तेरे लिये योग्य स्थान मिल गया। जा कवि के हृदय मे निवास कर।"

भगवान ने वाल्मीकि के हृदय को शीशे के समान निर्मल बना दिया था। वह सुन्दरी अपने निर्वाचित स्थान मे प्रविष्ट हो रही थी। किंतु जैसे ही उसने वाल्मीकि के हृदय की गहराई को मापा, उसका मुख पीला पड़ गया और उस पर भय छा गया।

देवता को आश्चर्य हुआ।

बोले—"क्या कवि हृदय मे भी रहने से डरती हो?"

"महाराज आपने मुझे किस स्थान पर रहने की आज्ञा दी है। मुझको तो उस एक ही हृदय मे हिमगिरि की चोटियां, अजीव जन्तुओ से भरी हुई जल की अथाह गहराई और अजन्ता की अन्धेरी गुफाएं आदि सब कुछ दृष्टिगोचर होता है। इसलिये महाराज मैं भयभीत होती हूं।

यह सुनकर विष्णु भगवान मुस्कराये और बोले—"मनुष्य के रूप मे बदले हुए फूल सन्तोष रख। यदि कवि के हृदय में वर्फ है तो तुम वसन्त ऋतु की गर्म वायु का झोंका वन जाओगी, जो बर्फ को भी पिघला देगा। यदि उसमे जल की गहराई है तो तुम उस गहराई में मोती वन जाओगी। यदि निर्जन वन

है तो तुम उसमें सुख और शांति के बीज बो दोगी। यदि अजंता की गुफा है तो तुम उसके अंधेरे में सूर्य की किरण बन कर चमकोगी।"

कवि ने इस बीच में बोलने की शक्ति प्राप्त कर ली थी। उसकी ओर देखते हुए भगवान विष्णु ने इतना और कहा—"जाओ यह वस्तु तुम्हे देता हूं, इसे लो और सुखी रहो।

—(::)—

समाज का शिकार

मै जिस युग का वर्णन कर रहा हूँ उसका न आदि है न अन्त।

वह एक बादशाह का बेटा था और उसका महलों मे लालन पालन हुआ था। किंतु उसे किसी के शासन मे रहना स्वीकार न था। इसलिये उसने राज महलो का तिलांजली देकर जंगलो की राह ली। उस समय देश भर में सात शासक थे। वह सातों शासको के शासन से बाहर निकल गया और एक ऐसे स्थान पर पहुंचा जहाँ किसी का राज्य न था।

आखिर शहजादे ने देश को क्यों छोड़ा ?

इसका कारण स्पष्ट है। कुंवे का पानी अपनी गहराई पर सन्तुष्ट है, नदी का जल तटो की जंजीरो से जकड़ा हुआ है किंतु जो पानी पहाड़ की चोटी पर है उसे हमारे सिरों पर मंडराने वाले बादलो में बन्दी नहीं बनाया जा सकता।

शहजादा भी ऊँचाई पर था और यह कल्पना भी न की जा सकती थी कि वह इतना विलासी जीवन छोड़कर जंगलों पहाड़ों और मैदानों में दृढ़ता से सामना करेगा। इस पर भी बहादुर शहजादा भयावने जंगल को देखकर भयभीत न हुआ। उसकी राह में सात समुद्र थे और न जाने कितनी नदियाँ। किंतु उसने सबको अपने साहस से पार कर लिया।

मनुष्य शिशु से युवा होता है और युवा से वृद्ध होकर मर जाता है, और फिर शिशु बन कर संसार में आता है। वह इस कहानी को अपनी माता-पिता से अनेक बार सुनता है कि भयानक समुद्र के किनारे एक किला है। उसमें एक शहजादी बन्दी है, जिसे मुक्त कराने के लिए एक शहजादा जाता है।

कहानी सुनने के ह चिंतन की मुद्रा में कपोलों पर हाथ रख कर सोचता कि कहीं मै ही तो वह शहजादा नहीं हूँ।

जिन्नों के द्वीप की हालत सुनकर उसके हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे एक दिन शहजादी को बन्दीगृह से मुक्ति दिलाने के लिये उस द्वीप को प्रस्थान करना पड़ेगा। संसार वाले मान-सम्मान चाहते हैं, धन-ऐश्वर्य के इच्छुक रहते हैं, प्रसिद्धि के लिये मरते है, भोग विलास की खोज मे लगे रहते है किंतु स्वाभिमानी शहजादा सुख चैन का जीवन छोड़कर अभागी शहजादी को जिन्नो के भयानक बन्दीगृह से मुक्ति दिलाने के लिए भयानक द्वीप का पर्यटन करता है।

: २ :

भयानक तूफानी समुद्र के सामने शहजादे ने अपने थके हुए घोड़े को रोका, किंतु पृथ्वी पर उतरना था कि सहसा दृश्य बदल गया और शहजादे ने आश्चर्य चकित दृष्टि से देखा कि सामने एक बहुत बड़ा नगर बसा हुआ है। ट्राम चल रही है, मोटरें दौड़ रही है, दुकानों के सामने खरीदारों की और दफ्तरों के सामने क्लर्कों की भीड़ है। फैशन के मतवाले चमकीले वस्त्रों से सुसज्जित चहुँ ओर घूम फिर रहे हैं। शहजादे की यह दशा

कि पुराने कुर्ते में बटन भी लगे हुए नहीं। धोती मैली, जूता फट गया, हरेक व्यक्ति उसे घृणा की दृष्टि से देखता है किंतु उसे चिंता नहीं। उसके सामने एक ही उद्देश्य है और वह अपनी धुन मे मगन है।

अब वह नहीं जानता कि शहजादी कहां है ?

वह एक अभागे पिता की अभागी बेटी है। धर्म के भूतों ने उसे समाज की मोटी जंजीरों में जकड़ कर छोटी अन्धेरी कोठरी के द्वीप मे बन्दी बना दिया है। चहुं ओर पुराने रीति रिवाज और रूढ़ियों के समुद्र घेरा डाले हुए है।

क्योंकि उसका पिता निर्धन था और वह अपने होने वाले दामाद को लड़की के साथ अमूल्य धन सम्पत्ति न दे सकता था इसलिए किसी सज्जन खानदान का कोई शिक्षित नवयुवक उसके साथ विवाह करने पर सहमत न होता था।

लड़की की आयु अधिक हो गई। वह रात-दिन देवताओ की पूजा अर्चना मे लीन रहती थी। उसके पिता का स्वर्गवास हो गया और वह अपने चाचा के पास चली गई।

चाचा के पास नकद रुपया भी था और काफी मकान आदि भी। अब उसे सेवा के लिए मुफ्त की सेविका मिल गई। वह सवेरे से रात के बारह बजे तक घर के काम काज में लगी रहती।

बिगड़ी दशा का शहजादा उस लड़की के पड़ौस में रहने लगा। दोनो ने एक दूसरे को देखा। प्रेम की जंजीरो ने उनके हृदयों से विवाह कर दिया। लड़की जो अब तक पैरो से मली हुई कोमल कलि की भाति थी उसने प्रथम बार सन्तोष और शांति का सांस लिया।

किंतु धर्म के भूत यह किस प्रकार सहन कर सकते थे कि कोई दुखित स्त्री लोहे की जंजीरों से छुटकारा पाकर सुख का

जीवन व्यतीत कर सके।

उसका विवाह क्या हुआ एक प्रलय उपस्थित हो गई। प्रत्येक दिशा मे शोर मचा कि धर्म संकट मे है, 'धर्म संकट में है।'

चाचा ने मूंछों पर ताव देकर कहा—चाहे मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति बरबाद ही क्यों न हो जाए, अपने कुल के रीति रिवाजों की रक्षा करूंगा।

बिरादरी वाले कहने लगे—हम समाज की सुरक्षा हेतु लाखों रुपया बलिदान कर देंगे और एक धर्म के पुजारी सेठ ने कहा—"भाई कलियुग है, कलियुग। यदि हम अचेत रहे तो धर्म विलय हो जाएगा। आप सब महानुभाव रुपये पैसे की चिंता न करें, यदि यह मेरा महान कोष धर्म के काम न आया तो फिर किस काम आवेगा। तुम तुरन्त इस पापी चाण्डाल के विरुद्ध अभियोग आरम्भ करो।"

अभियोग न्यायालय में उपस्थित हुआ। अभियोगी की ओर से बड़े-बड़े वकील अपने गौन फड़काते हुए न्यायालय पहुँचे। अभागी लड़की के विवाह के लिये तो कोई एक पैसा भी खर्च करना न चाहता था किंतु उसे और उसके पति को जेल भिजवाने के लिए रुपयों की थैलियाँ खुल गई।

नौजवान अपराधी ने चकित नेत्रों से देखा।

विधान की किताबों को चाटने वाली दीमकें दिन को रात और रात को दिन कर रही थीं।

धर्म के भूतों नें अपने देवी देवताओं की मिन्नता मानी। किसी के नाम पर बकरे बलिदान किये गये, किसी के नाम पर सोने का तख्त चढ़ाया गया। अभियोग की क्रिया तीव्रगति से आरम्भ हुई। बिगड़ी हुई दशा वाले शहजादे की ओर से न

कोई रुपया व्यय करने वाला था न कोई पक्ष-समर्थन करने वाला।

न्यायाधीश ने उसे कठिन कारावास का दंड दिया।

मंदिरों में प्रसन्नता के घण्टे घड़ियाल बजाए गए, सम्पूर्ण शक्ति से शंख बजाए गए, देवी और देवताओं के नाम बलि की गई। चढ़ावे चढ़ाए गए, पुजारियों और महन्तो की बन आई। सब आदमी खुशी मे परस्पर धन्यवाद और साधुवाद दे कर कहने लगे।

"भाईयो! यह समय कलियुग का है परन्तु ईश्वर की कृपा से धर्म अभी जीवित है।"

: ३ :

शहजादा अपनी सजा काट कर कारावास से वापस आ गया। किन्तु उसका लम्बा चौडा पर्यटन अभी समाप्त न हुआ था। वह संसार मे अकेला था, कोई भी उसका संगी साथी नहीं। संसार वाले उसे दंडी (सजायाफता) कह कर उसकी छाया से भी बचते हैं।

सत्य है इस संसार मे राज्य-नियम ही ईश्वर है।

फिर ईश्वर के अपराधीन से सीधे मुंह बात करना किसे सहन हो सकता है।

लम्बी चौड़ी मुसाफिरी तो उसकी समाप्त न हुई किन्तु उस के चलने का अन्त हो गया। उसके जख्मी पॉव मे चलने की शक्ति शेष न रही।

वह थक कर गिर पड़ा, रोगी था......बहुत अधिक रोगी। उस असहाय पथिक की शुश्रुसा कौन करता।

किन्तु उस की दुखित अवस्था पर एक सहृदय देवता का हृदय दुखा। उसका नाम "काल" था। उसने शहजादे की सेवा शुश्रुसा की। उसने सिर पर स्नेह से हाथ फेरा और उसके साथ शहजादा उस संसार मे पहुंच गया जहा न समाज है और न उसके अन्याय और न अन्यायी।

बच्चा आश्चर्य से अपनी माँ की गोद से यह कहानी सुनता है और अपने फूल से कोमल कपोल पर हाथ रख कर सोचता है, कहीं वह शहजादा मै ही तो नहीं हूं।

—.०:—

प्रेम का मूल्य

बृहस्पति छोटे देवताओं का गुरु था। उसने अपने बेटे कच को संसार में भेजा कि शंकराचार्य से अमर जीवन का रहस्य मालूम करे। कच शिक्षा प्राप्त करके स्वर्गलोक को जाने के लिए तैयार था। उस समय वह अपने गुरु की पुत्री देवयानी से विदा लेने के लिए आया।

कच—"देवयानी मैं विदा लेने के लिए आया हूँ। तुम्हारे पिता के चरण कमलों में मेरी शिक्षा पूरी हो चुकी है। कृपा कर के मुझे स्वर्ग लोक जाने की आज्ञा दो।"

देवयानी—'तुम्हारी कामना पूर्ण हुई। जीवन के अमरत्व का वह रहस्य तुम्हें ज्ञात हो चुका है, जिसकी देवताओं को सर्वदा इच्छा रही है। किन्तु तनिक विचार तो करो, क्या कोई और ऐसी वस्तु शेष नहीं जिसकी तुम इच्छा कर सको ?"

कच—"कोई नहीं।"

देवयानी—' बिल्कुल नहीं ? तनिक अपने हृदय को टटोलो और देखो सम्भवतः कोई बड़ी-छोटी इच्छा कहीं दबी पड़ी हो ?"

कच—"मेरे प्रातः जीवन का सूर्य अब ठीक आकाश पर आ गया है। उसके प्रकाश से तारा का प्रकाश मद्धम पड़ चुका है। मुझे अब वह रहस्य ज्ञात हो गया है जो जीवन का

अमरत्व है।"

देवयानी—"तब तो सम्पूर्ण संसार में तुम से अधिक कोई भी व्यक्ति प्रसन्न न होगा। खेद है कि आज पहली बार मैं यह अनुभव कर रही हूँ कि एक अपरिचित देश में विश्राम करना तुम्हारे लिये कितना कष्टप्रद था। यद्यपि यह सत्य है कि उत्तम से उत्तम वस्तु जो हमारे मस्तिष्क में थी, तुम को भेंट कर दी गई है।"

"इसका तनिक भी विचार मत करो और हर्ष सहित मुझे जाने की आज्ञा दो।"

"सुखी रहो मेरे अच्छे सखा। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये कि यह तुम्हारा स्वर्ग नहीं है। इस मृत्यु लोक में जहाँ तृषा से कंठ में कांटे पड़ जाते हैं हंसना और मुस्कराना कोई ठिठोली नहीं है। ये ही संसार है जहां अधूरी इच्छायें चहुं ओर घिरी हुई है। जहां खोई हुई प्रसन्नता की स्मृति में बार-बार कलेजे में हूक उठती है। जहाँ ठंडी सांसों से पाला पड़ा है। तुम्हें कहो, यहां इस दुनिया मे कोई क्या हंसेगा ?"

कच—"देवयानी बता, जल्दी बता मुझ से क्या अपराध हुआ।"

देवयानी—"तुम्हारे लिये इस वन को छोड़ना बहुत सरल है। यह वही वन है जिसने इतने वर्षों तक तुम्हें अपनी छाया से रखा और तुम्हें लोरियाँ दे देकर थपकता रहा। तुम्हें अनुभव नहीं होता कि आज वायु किस प्रकार क्रन्दन कर रही है ? देखो वृक्षों की हिलती हुई छाया को देखो, उनके पत्तो को देखो, वह वायु में घूम नहीं रहे, बल्कि किसी खोई हुई आशा की भाँति भटके-भटके फिर रहे है। एक तुम हो कि तुम्हारे होटो पर हँसी खेल रही है। प्रसन्नता के साथ तुम विदा हो रहे हो।"

कच—"मैं इस वन को किसी प्रकार मातृ-भूमि से कम नहीं समझता। क्योंकि यहाँ ही मैं वास्तव में आरम्भ से जन्मा हूँ। इसके प्रति मेरा स्नेह कभी कम न होगा।"

देवयानी—"वह देखो सामने बड़ का वृक्ष है। जिसने दिन के घोर ताप में जब कि तुमने पशुओं को हरियाली में चरने के लिये छोड़ दिया था, तुम पर प्रेम से छाया की थी।"

कच—"ऐ वन के स्वामी ! मैं तुम्हे प्रणाम करता हूँ। जब और विद्यार्थी यहां शिक्षा प्राप्ति हेतु आएँ और शहद की मक्खियो की भनभनाहट और पत्तों की सरसराहट के साथ-साथ तेरी छाया में बैठ कर अपना पाठ दोहराएं तो मुझे भी स्मरण रखना।"

देवयानी—"और तनिक वनमती का भी तो ध्यान करो जिसका निर्मल और तीव्र प्रवाह का जल प्रेम सगीत की एक लहर के समान है।"

कच—"आह ! उसको बिल्कुल नहीं भूल सकता। उसकी स्मृति सर्वदा बनी रहेगी। वनमती मेरी गरीबी की साथी है। ग्राम एक तल्लीन युवती की भाँति ओठों पर मुस्कान के साथ अपने सीधे-साधे गीत गुनगुनाते हुए वह निसस्वार्थ सेवा करती है।"

देवयानी—"किन्तु प्रिय सखा तुम्हें स्मरण कराना चाहती हूं कि तुम्हारा और कोई भी साथी था, जिसने बेहद प्रयत्न किया कि तुम इस निर्धनता के दुःख से भरे जीवन के प्रभाव से प्रभावित न हो। यह दूसरी बात है कि यह प्रयत्न व्यर्थ हुआ।"

कच—"उसकी स्मृति तो जीवन का एक अंक बन चुकी है

देवयानी—"मुझे वे दिन स्मरण है जब तुम पहली बार

यहाँ आये थे। उस समय तुम्हारी आयु किशोर अवस्था के लड़के से कुछ ही अधिक थी। तुम्हारे नेत्र मुस्कुरा रहे थे, तुम उस समय उधर वाटिका की बाड़ के समीप खड़े थे।"

कच—"हाँ! हाँ! उस समय तुम फूल चुन रही थी। तुम्हारे शरीर पर श्वेत वस्त्र थे। ऐसा दिखाई देता था जैसे उषा ने अपने प्रकाश में स्नान किया है। तुम्हें सम्भवतः स्मरण होगा मैंने कहा था यदि मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ तो मेरा सौभाग्य होगा।"

देवयानी—"स्मरण क्यों नहीं है। मैंने आश्चर्य से तुम से पूछा था कि तुम कौन हो? और तुम ने अत्यन्त नम्रता से उत्तर दिया था कि मैं इन्द्र की सभा के प्रसिद्ध गुरु 'बृहस्पति' का सुपुत्र हूँ। फिर तुमने बताया कि तुम मेरे पिता से वह रहस्य मालूम करना चाहते हो जिस से मुर्दे जीवित हो सकते हैं।"

कच—"मुझे सन्देह था कि सम्भव तुम्हारे पिता मुझे अपने शिष्यत्व में स्वीकार न करें।"

देवयानी—"किन्तु जब मैंने तुम्हारी स्वीकृति के लिये समर्थन किया तो वह इस विनती को अस्वीकार न कर सके। उन को अपनी पुत्री से इतना अधिक स्नेह है कि उस की वह कोई बात टाल नहीं सकते।"

कच—"और जब मैं तीन बार विपक्षियों के हाथों मारा गया तो तुम्हीं ने अपने पिता को बाध्य किया था कि मुझे दोबारा जीवित करें। मैं इस उपकार को बिल्कुल नहीं विस्मृत कर सकता।"

देवयानी—"उपकार? यदि तुम उस को विस्मृत कर दोगे तो मुझे बिल्कुल दुःख न होगा। क्या तुम्हारी स्मृति केवल लाभ पर ही दृष्टि रखती है? यदि यही बात है तो उसका विस्मृत हो

जाना ही अच्छा है। प्रतिदिन पाठ के पश्चात संध्या के अन्धेरे और सून्यता में यदि असाधारण हर्ष और प्रसन्नता की लहरें तुम्हारे सिर पर बीती हों तो उनको स्मरण रखो, उपकार को स्मरण रखने से क्या लाभ। यदि कभी तुम्हारे पास से कोई गुजरा हो, जिसके गीत का एक चुभता हुआ टुकड़ा तुम्हारे पाठ में उलझ गया हो या जिस के वायु में लहराते हुए आंचल ने तुम्हारे ध्यान को पाठ से हटा कर अपनी ओर आकर्षित कर लिया हो। अपने अवकाश के समय में कभी उसको अवश्य स्मरण कर लेना। परन्तु केवल यही, कुछ और नहीं ! सौंदर्य और प्रेम का याद न आना ही अच्छा है।

कच—"बहुत सी वस्तुएं हैं जो शब्दों द्वारा प्रकट नहीं हो सकतीं।"

देवयानी—"हाँ, हाँ, मैं जानती हूँ। मेरे प्रेम से तुम्हारे हृदय का एक-एक अणु छिद चुका है और यही कारण है कि मैं बिना संकोच के इस सत्य को प्रकाट कर रही हूं कि तुम्हारी सुरक्षा और कम बोलना मुझे पसन्द नहीं। तुम्हे मुझ से अलग होना अच्छा नहीं यहीं विश्राम करो, कोई ख्याति ही हर्ष का साधन नहीं हैं। अब तुम मुझ को छोड़ कर नहीं जा सकते, तुम्हारा रहस्य मुझ पर खुल चुका है।"

कच—"नहीं देवयानी नहीं, ऐसा न कहो।"

देवयानी—"क्या कहा, नहीं ? मुझ से क्यों झूठ बोलते हो ? प्रेम की दृष्टि छुपी नहीं रहती। प्रति दिन तुम्हारे सिर के तनिक से हिलाने से, तुम्हारे हाथों के कम्पन से तुम्हारा हृदय तुम्हारी इच्छा मुझ पर प्रकट करता है। जिस प्रकार समुद्र अपनी लहरो के द्वारा काम करता है, उसी प्रकार तुम्हारे हृदय ने तुम्हारी भाव-भंगिमा के द्वारा मुझ तक सन्देश पहुंचाया। सहसा मेरी आवाज

सुनकर तुम तिलमिला उठते थे। क्या तुम समझते हो कि मुझे तुम्हारी उस दशा का अनुभव नहीं हुआ? मैं तुम को भली भांति जानती हूँ और इसलिये अब तुम सर्वदा मेरे हो। तुम्हारे देवताओं का राजा भी इस सम्बन्ध को नहीं तोड़ सकता?"

कच—"किन्तु देवयानी तुम्ही कहो, क्या इतने वर्ष अपने घर और घर वालों से अलग रह कर मैंने इसीलिए परिश्रम किया था?"

देवयानी—क्यों नहीं, क्या तुम समझते हो कि संसार में शिक्षा का मूल्य है और प्रेम का कोई मूल्य नहीं? समय नष्ट मत करो, साहस से काम लो और यह प्रतिज्ञा करो। शक्ति, शिक्षा और ख्याती की प्राप्ति के लिये मनुष्य जो तपस्या और इन्द्रियों का दामन करता है एक स्त्री के सामने इन सबका कोई मूल्य नहीं।"

कच—"तुम जानती हो कि मैंने सच्चे हृदय से देवताओं से प्रतिज्ञा की थी कि मैं जीवन के अमरत्व का रहस्य प्राप्त करके आपकी सेवा में आ उपस्थित होऊंगा।"

देवयानी—"परन्तु क्या तुम कह सकते हो कि तुम्हारे नेत्रों ने पुस्तकों के अतिरिक्त और किसी वस्तु पर दृष्टि नहीं डाली? क्या तुम यह कह सकते हो मुझे पुष्प भेट करने के लिए तुमने कभी अपनी पुस्तकों को नहीं छोड़ा?"

क्या तुम्हें कभी ऐसे अवसर की खोज नहीं रही, कि सन्ध्या काल मेरी पुष्प वाटिका के पुष्पों पर जल छिड़क सको? सन्ध्या समय जब नदी पर अन्धकार का वितान तन जाता तो मानो प्रेम अपने दुखित मौन पर छा जाता। तुम घास पर मेरे बराबर बैठ कर मुझे अपने स्वर्गिक गीत गाकर क्यों सुनाते थे? क्या यह सब काम उन षड़यन्त्रों से भरी हुई चालाकियों का

एक भाग नहीं, जो तुम्हारे स्वर्ग में क्षम्य है ? क्या इन कृत्रिम युक्तियों से तुम ने मेरे पिता को अपना न बनाना चाहा था और अब विदाई के समय धन्यवाद के कुछ मूल्यहीन सिक्के उस सेविका की ओर फेंकते हो, जो तुम्हारे झूठे छल से छली जा चुकी है ?"

"अभिमानी स्त्री ! वास्तविकता मालूम करने से क्या लाभ ? यह मेरा भ्रम था कि मैंने एक विशेष भावना के वश तेरी सेवा की, तो मुझे उसका दण्ड मिल गया। किन्तु अभी वह समय नहीं आया कि मैं इस प्रश्न का उत्तर दे सकूं कि मेरा प्रेम सत्य था या नहीं। क्योंकि मुझे अपने जीवन का उद्देश्य दिखाई दे रहा है। अब चाहे तेरे हृदय से अग्नि की चिंगारियां निकल-निकल कर सम्पूर्ण वायु मण्डल को आच्छादित कर ले, तब भी मैं स्वर्ग को अवश्य वापस जाऊंगा। इस बात को मैं भली भांति जानता हूँ कि स्वर्ग अब मेरे लिये स्वर्ग नहीं रहा, देवताओं की सेवा मे यह रहस्य तुरन्त ही पहुँचाना मेरा कर्तव्य है। जिस को मैंने कठिन परिश्रम के पश्चात् प्राप्त किया है। इससे पहले भी मुझे व्यक्तिगत प्रसन्नता की प्राप्ति का ध्यान तनिक भी नहीं था। क्षमा कर देवयानी मुझे क्षमा कर ? सच्चे हृदय से क्षमा का इच्छुक हूं। इस बात को सत्य जान कि तुझे आघात पहुँचा कर मैंने अपनी कठिनाइयों को दुगना कर लिया है।"

देवयानी—'क्षमा ? तुमने मेरे नारी हृदय को पाषाण की भांति कठोर कर दिया है। वह ज्वाला मुखी की भांति क्रोध मे भभक रहा है। तुम अपने काम पर वापस जा सकते हो किन्तु मेरे लिये शेष क्या रहा, केवल स्मृति का एक कंटीला बिछौना और एक छुपी हुई लज्जा, जो सर्वदा मेरे प्रेम का उपहास करेगी।

तुम एक पथिक के रुप में यहां आये धूप से बचने के लिये। मेरे वृक्षों की छाया में आश्रय लिया और अपना समय बिताया। तुमने मेरे उद्यान के सम्पूर्ण पुष्प तोड़ कर एक माला गूंथी और जब चलने का समय आया तो तुमने धागा तोड़ दिया, पुष्पों को धूलि मे मिला दिया। मैं अपने दुखित हृदय से शाप देती हूं कि जो शिक्षा तुमने प्राप्त की है वह सब तुमसे विस्मृत हो जाये दूसरे व्यक्ति तुम्हारे से यह शिक्षा प्राप्त करेगे किन्तु जिस प्रकार तारे रात मे कुंवारी अन्धयारी से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते बल्कि अलग रहते है, उसी प्रकार तुम्हारी यह विद्या भी तुम्हारे जीवन से अलग रहेगी। व्यक्तिगत रूप में तुम्हे इससे कोई लाभ न होगा और यह केवल इस लिये कि तुमने प्रेम का अपमान किया, प्रेम का मूल्य न समझा।

भिखारिन

अन्धी प्रति दिन मन्दिर के दरवाजे पर जाकर खड़ी होती, दर्शन करने वाले बाहर निकलते तो वह अपना हाथ फैला देती और नम्रता से प्रश्न करती—"बाबू जी अन्धी पर दया हो जाए।"

वह जानती थी कि मन्दिर के आने वाले सहृदय और श्रद्धालु हुआ करते हैं। उसका यह अनुमान असत्य न था। आने वाले दो चार पैसे उस के हाथ पर रख ही देते थे। अन्धी उन को दुवाएं देती और उनकी सहृदयता को सराहती। स्त्रियां भी उसके पल्ले में थोड़ा बहुत अनाज डाल जाया करती थीं।

सुबह से शाम तक वह इसी प्रकार हाथ फैलाए खड़ी रहती। उसके पश्चात् मन ही मन मे भगवान को प्रणाम करती और अपनी लाठी के सहारे झोंपड़ी का पथ ग्रहण करती। उसकी झोंपड़ी नगर से बाहर थी। रास्ते में भी याचना करती जाती किन्तु राहगीरो मे अधिक संख्या श्वेत वस्त्रो वालो की होती, जो पैसे देने की अपेक्षा झिड़कियां दिया करते हैं। तब भी अन्धी निराश न होती और उसकी याचना बराबर जारी रहती। झोंपड़ी तक पहुँचाते २ उसे दो चार पैसे और मिल जाते।

झोपड़ी के समीप पहुँचते ही एक दस वर्ष का लड़का उछलता कूदता आता और उससे चिपट जाता। अन्धी टटोल कर उसके मस्तक को चूमती।

बच्चा कौन है ? किसका है ? कहां से आया ? इस बात से कोई परिचित नहीं था। पांच वर्ष हुए पास-पड़ौस वालों ने उसे अकेला देखा था। इन्हीं दिनों एक दिन सन्ध्या समय लोगों ने उसकी गोद में एक बच्चा देखा, वह रो रहा था, अन्धी उस का मुख चूम-चूम कर उसे चुप करने का प्रयत्न कर रही थी। वह कोई साधारण घटना न थी, अतः किसी ने भी न पूछा कि बच्चा किस का है। उसी दिन से यह बच्चा अन्धी के पास था और प्रसन्न था। उसको वह अपने से अच्छा खिलाती और पहनाती।

अन्धी ने अपनी झोंपड़ी में एक हांडी गाड़ रखी थी। सध्या समय जो कुछ मांगकर लाती उस में डाल देती और उसे किसी वस्तु से ढांप देती ! इस लिये कि दूसरे व्यक्तियों की दृष्टि उस पर न पड़े। खाने के लिये अन्न काफी मिल जाता था। उससे काम चलाती। पहले बच्चे को पेट भर कर खिलाती फिर स्वयं खाती। रात को बच्चे को अपने वक्ष से लगा कर वहीं पड़ रहती। प्रातःकाल होते ही उसको खिला पिला कर फिर मन्दिर के द्वार पर जा खड़ी होती।

: २ :

काशी मे सेठ बनारसी दास बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति है। बच्चा २ उनकी कोठी से परिचित है। बहुत बड़े देव भक्त और धर्मात्मा है। धर्म का उनको बड़ा पक्ष है। दिन के बारह बजे तक यह सेठ स्नान-ध्यान मे संलग्न रहते है। उनकी कोठी पर हर समय एक भीड़ लगी रहती थी। कर्ज के इच्छुक तो आते ही थे, परन्तु ऐसे व्यक्तियों का भी तांता बंधा रहता जो अपनी पूंजी सेठ जी

के पास धरोहर रूप में रखने आते थे। सैंकड़ों भिखारी अपनी जमा पूंजी इन्हीं सेठ जी के पास जमा कर जाते थे। अन्धी को भी यह बात ज्ञात थी, किंतु पता नहीं कि अब तक वह अपनी कमाई यहाँ जमा कराने से क्यों हिचकिचाती रही।

उसके पास काफी रुपये हो गये थे, हाँडी लगभग पूरी भर आई थी। उसको शंका थी कि उसको कोई चुरा न ले। एक दिन संध्या समय अन्धी ने वह हांडी उखाड़ी और अपने फटे हुए आँचल में छुपाकर सेठजी की कोठी पर जा पहुंची।

सेठजी बही खाते के पृष्ठ उलट रहे थे, उन्होंने पूछा—'क्या है बुढ़िया।'

अन्धी ने हांडी उनके आगे सरका दी और डरते २ कहा—'सेठ जी इसे अपने पास जमा कर लो, मैं अंधी अपाहिज कहा रखती फिरूंगी ?'

सेठजी ने हांडी की ओर देखकर कहा—'इसमें क्या है ?'

अंधी ने उत्तर दिया—'भीक मांग २ कर अपने बच्चे के लिये दो चार पैसे संग्रह किये हैं, अपने पास रखती डरती हूँ, कृपया इन्हें आप अपनी कोठी मे रख लो।'

सेठ जी ने मुनीम की ओर संकेत करते हुए कहा—'बही मे जमा कर लो। फिर बुढ़िया से पूछा—'तेरा नाम क्या है ?'

अंधी ने अपना नाम बताया, मुनीम जी ने नकदी गिनकर उसके नाम से जमा कर ली। अंधी सेठजी को आशीर्वाद देती हुई अपनी झोंपड़ी में चली गई।

: ३ :

दो वर्ष बहुत सुख के साथ बीते। इसके पश्चात् एक दिन लड़के को ज्वर ने आन दबाया। अंधी ने दवा दारुकी, झाड़

फूंक से भी काम लिया, टोने टोटके की परीक्षा की, परन्तु सम्पूर्ण प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। लड़के की दशा दिन प्रति दिन बुरी होती गई, अंधी का हृदय टूट गया, साहस ने जबाब दे दिया, निराश हो गई। परन्तु फिर ध्यान आया कि सम्भवत: डाक्टर के इलाज से फायदा हो जाए। इस विचार के आते ही वह गिरती पड़ती सेठ जी की कोठी पर जा पहुँची। सेठ जी उपस्थित थे।

अंधी ने कहा—'सेठ जी मेरी जमा पूंजी में से दस पांच रुपये मुझे मिल जायें तो बड़ी कृपा हो। मेरा बच्चा मर रहा है, डाक्टरो को दिखाऊँगी।'

सेठ जी ने कठोर स्वर मे कहा—'कैसी जमा पूंजी ? कैसे रुपये ? मेरे पास किसी के रुपये जमा नहीं है।'

अंधी ने रोते हुए उत्तर दिया—'दो वर्ष हुए मैं आपके पास धरोहर रूप मे रख कर गई थी। दे दीजिये बड़ी दया होगी।'

सेठजी ने मुनीम की ओर रहस्यमयी दृष्टि से देखते हुए कहा—'मुनीम जी जरा देखना तो, इसके नाम की कोई पूंजी जमा है क्या ? तेरा नाम क्या है री ?'

अंधी की जान मे जान आई, आशा बंधी। पहला उत्तर सुन कर उसने सोचा कि यह सेठ बेईमान है, किंतु अब सोचने लगी कि सम्भवत: इसे ध्यान न रहा होगा। ऐसा धर्मी व्यक्ति भी भला कहीं झूठ बोल सकता है। उसने अपना नाम बता दिया। उलट-पलट कर देखा। फिर कहा—'नहीं तो, इस नाम पर एक पाई भी जमा नहीं है।'

अंधी वहीं जमी बैठी रही। उसने रो-रो कर कहा—'सेठ जी

परमात्मा के नाम पर, धर्म के नाम पर, कुछ दे दीजिये। मेरा बच्चा जी जाएगा। मैं जीवन भर आपके गुण गाऊंगी।'

परन्तु पत्थर मे जोंक न लगी। सेठ जी ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—'जाती है या नौकर को बुलाऊं।'

अंधी लाठी टेक कर खड़ी हो गई और सेठ जी की ओर मुख करके कहा—'अच्छा भगवान तुम्हे बहुत दे।' और अपनी झोंपड़ी की ओर चल दी।

यह आशीष न थी बल्कि एक दुखी का शाप था। बच्चे की दशा बिगड़ती गई, दवा दारु हुई ही नहीं, फायदा क्योंकर होता। एक दिन उसकी अवस्था बड़ी चिंता जनक हो गई, प्राणो के लाले पड़ गये, उसके जीवन से अंधी भी निराश हो गई। सेठ जी पर रह-रह कर उसे क्रोध आता था। इतना धनी व्यक्ति है, दो चार रुपये दे देता तो क्या चला जाता और फिर मैं उससे कुछ दान नहीं मांग रही थी, अपने ही रुपये मांगने गई थी। सेठ जी से उसे घृणा हो गई।

बैठे-बैठे उसको कुछ ध्यान आया। उसने बच्चे को अपनी गोद मे उठा लिया और ठोकरें खाती, पड़ती, सेठ जी के पास पहुँची और उनके द्वार पर धरना देकर बैठ गई। बच्चे का शरीर ज्वर से भभक रहा था और अन्धी का कलेजा भी।

एक नौकर किसी काम से बाहर आया। अंधी को बैठी देख कर उसने सेठ जी को सूचना दी। सेठ जी ने आज्ञा दी कि उसे भगा दो।

नौकर ने अंधी से चले जाने को कहा, किंतु वह उस स्थान से न हिली। मारने का भय दिखाया, पर वह टस से मस न हुई। उसने फिर अन्दर जाकर कहा कि वह नहीं टलती।

सेठ जी स्वयं बाहर पधारे। देखते ही पहचान गये। बच्चे

को देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि उसकी शक्ल सूरत उनके मोहन से बहुत मिलती-जुलती है। सात वर्ष हुए जब मोहन किसी मेले में खो गया था। उसकी बहुत खोज की, पर उसका कोई पता न मिला। उन्हें स्मरण हो आया कि मोहन की जांघ पर एक लाल रंग का चिन्ह था। इस विचार के आते ही उन्होंने अंधी की गोद के बच्चे की जांघ देखी। चिन्ह अवश्य था, परन्तु पहले से कुछ बड़ा। उनको विश्वास हो गया कि बच्चा उन्हीं का मोहन है। उन्होंने तुरन्त उसको छीन कर अपने कलेजे से चिमटा लिया। शरीर ज्वर से तप रहा था। नौकर को डाक्टर लाने के लिए भेजा और स्वयं मकान के अन्दर चल दिये।

अंधी खड़ी हो गई और चिल्लाने लगी—'मेरे बच्चे को न ले जाओ, मेरे रुपये तो हजम कर गये अब क्या मेरा बच्चा भी मुझ से छीनोगे?'

सेठ जी बहुत चिन्तित हुए और कहा—'बच्चा मेरा है; यही एक बच्चा है, सात वर्ष पूर्व कहीं खो गया था अब मिला है, अब इसको नहीं जाने दूंगा और लाख यत्न करके भी इसके प्राण बचाऊँगा।

अंधी ने एक जोर का ठहाका लगाया—'तुम्हारा बच्चा है, इस लिये लाख यत्न करके भी उसे बचाओगे। मेरा बच्चा होता तो उसे मर जाने देते, क्यों? यह भी कोई न्याय है। इतने दिनों तक खून पसीना एक करके उसको पाला है मैं उसको अपने हाथ से नहीं जाने दूंगी।'

सेठ जी की अजीब दशा थी। कुछ करते-धरते बन नहीं पड़ता था। कुछ देर वहीं मौन खड़े रहे फिर मकान के अन्दर चले गये। अंधी कुछ समय तक खड़ी रोती रही फिर वह भी

अपनी झोंपड़ी की ओर चल दी।

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभु की कृपा हुई या दवा ने अपना जादू का सा प्रभाव दिखाया। मोहन का ज्वर उतर गया। होश आने पर उसने आँख खोली तो सर्व प्रथम शब्द उसकी जबान से निकला "माँ।"

चहुँ ओर अपरिचित शक्लें देखकर उसने अपने नेत्र फिर बन्द कर लिए। उस समय से उसका ज्वर फिर अधिक होना आरम्भ हो गया। माँ माँ की रट लगी हुई थी, डाक्टरों ने जवाब दे दिया, सेठ जी के हाथ पाँव फूल गये, चहुँ आर अन्धेरा दिखाइ पड़ने लगा।

"क्या करूँ, एक ही बच्चा है, इतने दिनों बाद मिला भी तो मृत्यु उसको अपने चगुल मे दबा रही है इसे कैसे बचाऊँ?"

सहसा उनको अन्धी का ध्यान आया। पत्नी को बाहर भेजा कि देखे कहीं वह अब तक द्वार पर न बैठी हो। परन्तु वह यहाँ कहाँ? सेठ जी ने फिटन तैयार कराई और बस्ती से बाहर उस की झोंपड़ी पर पहुंचे। झोपड़ी बिना द्वार के थी, अन्दर गए। देखा कि अन्धी एक फटे पुराने टाट पर पड़ी है और उसके नेत्रो से अश्रु धार बह रही है। सेठ जी ने धीरे से उस को हिलाया। उसका शरीर भी अग्नि की भान्ति तप रहा था।

सेठ जी ने कहा—"बुढ़िया! तेरा बच्चा मर रहा है, डाक्टर निराश हो गए, रह-रह कर वह तुझे पुकारता है। अब तू ही उस के प्राण बचा सकती है। चल और मेरे······नहीं-नहीं अपने बच्चे की जान बचा ले।"

अन्धी ने उत्तर दिया—"मरता है तो मरने दो, मैं भी मर रही हूँ। हम दोनों स्वर्ग लोक मे फिर माँ बेटे की तरह मिल

जायेगे। इस लोक में सुख नहीं है, वहां मेरा बच्चा सुख में रहेगा। मै वहां उसकी सुचारु रूप से सेवा शुश्रूसा करूंगी।"

सेठ जी रो दिए। आज तक उन्होंने किसी के सामने सिर न झुकाया था। किंतु इस समय अन्धी के पॉवों पर गिर पड़े और रो-रो कर कहा—"ममता की लाज रख लो, आखिर तुम भी उसकी मॉ हो। चलो तुम्हारे से वह बच जाएगा।"

ममता शब्द ने अन्धी को विकल कर दिया। उसने तुरन्त कहा—"अच्छा चलो।"

सेठ जी सहारा देकर उसे बाहर लाये और फिटन पर बिठा दिया और घर की ओर फिटन दौड़ने लगी। उस समय सेठ और अधी भिखारिन दोनों की एक ही दशा थी। दोनो की यही इच्छा थी कि शीघ्र से शीघ्र अपने बच्चे के पास पहुंच जाये।

कोठी आ गई, सेठ जी ने सहारा देकर अन्धी को उतारा और अंदर ले गए। और ले जाकर मोहन के माथे पर हाथ फेरा। मोहन पहचान गया कि यह उसकी मां का हाथ है। उस ने तुरंत नेत्र खोल दिये, और उसे अपने समीप खड़े हुए देख कर कहा—"मॉ तुम आ गई।"

अन्धी ने स्नेह से भरे हुए स्वर में उत्तर दिया—"हॉ बेटा, तुम्हे छोड़ कर कहॉ जा सकती हू।"

अंधी भिखारिन बुढ़िया मोहन के सिरहाने बठ गई और उसने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। मोहन को बहुत सुख अनुभव हुआ और वह उसकी गोद मे सो गया।

दूसरे दिन से मोहन की दशा अच्छी होने लगी और दस पन्द्रह दिन में वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया। जो काम हकीमों के

जोशान्दे, वैद्यो की पुड़िया और डाक्टरों के मिक्सचर न कर सकते थे वह अन्धी की स्नेहमयी सेवा ने पूरा कर दिया।

मोहन के पूरी तरह स्वस्थ हो जाने पर अन्धी ने विदा माँगी। सेठ जी ने बहुत कुछ कहा सुना कि वह उन्हीं के पास रह जाए परन्तु वह सहमत न हुई, विवश होकर विदा करना पड़ा। जब वह चलने लगी तो सेठ जी ने रुपयो की एक थैली उस के हाथ में दे दी। अन्धी ने मालूम किया "इस में क्या है?"

सेठ जी ने कहा—"इस मे तुम्हारी धरोहर है, तुम्हारे रुपये। मेरा वह अपराध......"

अन्धी ने बात काट कर कहा—"यह रुपये तो मैंने तुम्हारे मोहन के लिए संग्रह किये थे, उसी को दे देना।"

अन्धी ने थैली वहीं छोड़ दी और लाठी टेकती हुई चल दी। बाहर निकल कर फिर उसने उस घर की ओर नेत्र उठाए। उसके नेत्रों से अश्रु बह रहे थे किंतु वह एक भिखारिन होते हुए भी सेठ से महान् थी। इस समय सेठ याचक था और वह दाता थी।

———

अनमोल भेंट

रायचरण बारह वर्ष की आयु से अपने मालिक का बच्चा खिलाने पर नौकर हुआ था। उसके पश्चात् काफी समय बीत गया। नन्हा बच्चा रायचरण की गोद से निकल कर स्कूल मे प्रविष्ट हुआ, स्कूल से कालिज में पहुंचा, फिर एक सरकारी स्थान पर लग गया। किंतु रायचरण अब भी बच्चा खिलाता था, यह बच्चा उसके गोद के पाले हुए अनुकूल बाबू का पुत्र था।

बच्चा घुटनो के बल चलकर बाहर निकल जाता। जब रायचरण दौड़ कर उसको पकड़ता तो वह रोता और अपने नन्हे नन्हे हाथों से रायचरण को मारता था।

रायचरण हंस कर कहता—"हमारा भैया भी बड़ा होकर जज साहब बनेगा—" जब वह रायचरण को 'चन्ना' कह कर पुकारता तो उसका हृदय बहुत हर्षित होता। वह दोनो हाथ पृथ्वी पर टेक कर घोड़ा बनता और बच्चा उसकी पीठ पर सवार हो जाता।

इन्हीं दिनों में अनुकूल बाबू की बदली पद्मा नदी के किनारे एक जिले में हो गई तो नये स्थान को ओर जाते हुए कलकत्ते से उन्होंने अपने बच्चे के लिए मूल्यवान आभूषण और कपड़ों के अतिरिक्त एक छोटी सी सुन्दर गाड़ी भी खरीदी।

वर्षा ऋतु थी। कई दिनो से मूसलाधार वर्षा हो रही थी। ईश्वर-ईश्वर करते हुए बादल फटे। सन्ध्या का समय था। बच्चे ने बाहर जाने के लिए आग्रह किया। रायचरण उसे गाड़ी में बिठा कर बाहर ले गया। खेतो में पानी खूब भरा हुआ था बच्चे ने फूलो का गुच्छा देखकर जिद की, रायचरण ने उसे बहलाना चाहा किंतु वह न माना। विवश रायचरण बच्चे का मन रखने के लिये घुटनो पानी में फूल तोड़ने लगा। कई स्थानों पर उसके पांव कीचड़ में बुरी तरह धंस गए। बच्चा तनिक देर मौन गाड़ी मे बैठा रहा फिर उसका ध्यान लहराती हुई नदी की ओर गया वह चुपके से गाड़ी से उतरा। पास ही एक लकड़ी पड़ी थी उठा ली और भयानक नदी के तट पर पहुँच कर उसकी लहरों से खेलने लगा। नदी के शोर में ऐसा मालूम होता था कि नदी की चचल और मुंहजोर जलपरियाँ सुन्दर बच्चे को अपने साथ खेलने के लिये बुला रही है।

रायचरण फूल लेकर वापस आया तो देखा कि गाड़ी खाली है उसने इधर उधर देखा, पाँव के नीचे से पृथ्वी निकल गई। पागलों की भांति चहुँ ओर दौड़ने लगा। वह बार-बार बच्चे का नाम लेकर पुकारता था लेकिन उत्तर मे "चन्ना" की मधुर ध्वनि न आती थी।

चारों ओर अन्धेरा छा गया। बच्चे की माता को चिन्ता होने लगी। उसने चारों ओर आदमी दौड़ाए। कुछ व्यक्ति लालटेन लिये हुए नदी के किनारे खोज करते पहुँचे। राय चरण उन्हें देखकर उनके चरणो में गिर पड़ा। उन्होंने उस से प्रश्न करने आरम्भ किये किन्तु वह प्रत्येक प्रश्न के उत्तर मे यही कहता—"मुझे कुछ मालूम नहीं।"

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति की यही सम्मति थी कि छोटे बच्चे

को पद्मा नदी ने अपने आँचल में छुपा लिया है किन्तु फिर भी हृदय में विभिन्न प्रकार की शंकाएं उत्पन्न हो रही थी। एक यह कि उसी संध्या को निर्वासितों (खानाबदोशो) का एक समूह नगर से गया था और माँ को सन्देह था कि राय चरण ने कहीं बच्चे को निर्वासितों के हाथों न बेच दिया हो। वह राय चरण को अलग ले गई और उस से विनती करते हुए कहने लगी—"राय चरण तुम मुझ से जितना रुपया चाहो ले लो; किन्तु परमात्मा के लिये मेरी दशा पर तरस खा कर मेरा बच्चा मुझ को वापस कर दो।"

परन्तु राय चरण कुछ उत्तर न दे सका, केवल माथे पर हाथ मार कर मौन हो गया।

स्वामीनी ने क्रोध और आवेश की दशा मे उसको घर से बाहर निकाल दिया। अनुकूल बाबू ने पत्नी को बहुत समझाया किन्तु माता के हृदय से शंकाएं दूर न हुई। वह बराबर यही कहती रही कि—"मेरा बच्चा सोने के आभूषण पहने हुए था अवश्य इसने ······ "

रायचरण अपने गाँव वापस चला आया। उसके कोई सन्तान न थी और न ही सन्तान होने की कोई सम्भावना थी। किन्तु साल की समाप्ति पर उसके घर पुत्र ने जन्म लिया। परन्तु पत्नी सूतिका-गृह में ही मर गई। घर मे एक विधवा बहिन थी उसने बच्चे के पालन-पोषण का भार अपने ऊपर लिया।

जब बच्चा घुटनों के बल चलने लगा, वह घर वालों की नज़र बचा कर बाहर निकल जाता। राय चरण जब उसे दौड़ कर पकड़ता तो वह चचलता से उसको मारता था। उस समय राय चरण के नेत्रों के सामने अपने उस नन्हे मालिक की सूरत फिर जाती तो पद्मा नदी की लहरों मे लुप्त हो गया था।

बच्चे की जबान खुल तो वह बाप को 'बाबा' और भूवा को मामा इस ढंग से कहता था जिस ढंग से राय चरण का नन्हा मालिक बोलता था। रायचरण उसकी आवाज़ से चौंक उठता। उसे पूर्ण विश्वास था कि नन्हे मालिक ने उसके घर में जन्म लिया है।

इस विचार को निर्धारित करने के लिए उसके पास तीन प्रमाण थे। एक तो यह कि फलन नन्हे मालिक की मृत्यु के थोड़े ही समय पश्चात् उत्पन्न हुआ। दूसरे यह कि उसकी पत्नी वृद्ध हो गई थी और सन्तान उत्पत्ति की कोई आशा न थी। तीसरे यह कि बच्चे के बोलने का ढग और उसकी सम्पूर्ण भाव-भंगिमाएँ नन्हे मालिक से मिलती-जुलती थी।

वह हर बच्च की देख भाल मे संलग्न रहता। उसे भय था कि उसका नन्हा मालिक फिर कहीं गायब न हो जाए। वह बच्चे के लिए एक गाड़ी लाया और अपनी पत्नी के आभूषण बेचकर बच्चे के लिये आभूषण बनवा दिये। वह उसे गाड़ी में बिठा कर प्रतिदिन वायु सेवन के लिये बाहर ले जाता था।

धीरे-धीरे दिन बीतते गये और बच्चा सियाना हो गया। परन्तु इस लाड़-चाव मे वह बहुत बिगड गया था। किसी से सीधे मुँह बात न करता था। गाँव के लड़के उसे लाट साहब कह कर छेड़ते थे।

जब लड़का शिक्षा योग्य हुआ तो राय चरण अपनी छोटी सी ज़मीन बेचकर कलकत्ते आ गया। उसने दौड़ धूप कर के नौकरी खोजी और फलन को स्कूल में दाखिल करवा दिया। उसको पूर्ण विश्वास था कि बड़ा होकर फलन अवश्य जज बनेगा।

होते-होते अब फलन की आयु बारह वर्ष की हो गई। अब वह खूब लिख पढ़ सकता था। उसका स्वास्थ्य अच्छा और सूरत शक्ल भी अच्छी थी। उसको बनाव-श्रृंगार की बड़ी चिन्ता रहती। जब देखो दर्पण हाथ में लिये बाल बना रहा है।

वह अपव्ययी भी बहुत था। पिता की सारी आय व्यर्थ की विलास सामग्री में व्यय कर देता। राय चरण उस से प्रेम तो पिता की भाँति करता था, किंतु प्रायः उसका बर्ताव उस लड़के से ऐसा ही था जैसे मालिक के साथ नौकर का होता है। उसका फलन भी उसे पिता न समझता था। दूसरी बात यह थी कि राय चरण स्वयं को फलन का पिता प्रकट भी न करता था।

छात्र वास के विद्यार्थी रायचरण के गंवारपन का उपहास करते और फलन भी उन्हीं के साथ सम्मिलित हो जाता।

राय चरण ने ज़मीन बेच कर जो कुछ रुपया प्राप्त किया था वह अब लगभग सारा समाप्त हो चुका था। उसका साधारण वेतन फलन के खर्चों के लिए कम था। वह अपने पिता से जेब खर्च और विलास की सामग्री और अच्छे-अच्छे वस्त्रों के लिए झगड़ता रहता था।

आखिर एक युक्ति राय चरण के मस्तिष्क में आई। उसने नौकरी छोड़ दी और उसके पास जो कुछ शेष रुपया था फलन को सौंप कर बोला—"फलन मैं एक आवश्यक कार्य से गाँव जा रहा हूँ, बहुत जल्द वापस आ जाऊंगा। तुम किसी बात से घबराना नहीं।"

: ३ :

रायचरण सीधा उस स्थान पर पहुँचा जहाँ अनुकूल बाबू जज के ओहदे पर लगे हुए थे। उनके और कोई दूसरी संतान

न थी इसी कारण उनकी पत्नी हर समय चिन्तित रहती थी।

अनुकूल बाबू कचहरी से वापस आकर कुर्सी पर बैठे हुए थे और उनकी पत्नी सन्तानोत्पत्ति के लिए बाजारू दवा बेचने वाले से जड़ी बूटियाँ खरीद रही थी।

काफी दिनों के पश्चात वह अपने वृद्ध नौकर राय चरण को देख कर आश्चर्य चकित हुई। पुरानी सेवाओं का विचार करके उसको राय चरण पर तरस आ गया और उस से पूछा—"क्या तुम फिर नौकरी करना चाहते हो?"

राय चरण ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया—"मैं अपनी मालकिन के चरण छूना चाहता हूं।"

अनुकूल बाबू रायचरण की आवाज सुनकर कमरे से निकल आये। रायचरण की शक्ल देखकर उनके कलेजे का जख्म ताजा हो गया और उन्होंने मुख फेर लिया।

रायचरण ने अनुकूल बाबू को सम्बोधित करके कहा--"सरकार आपके बच्चे को पद्मा ने नहीं बल्कि मैंने चुराया था।"

अनुकूल बाबू ने आश्चर्य से कहा--"तुम यह क्या कह रहे हो, क्या मेरा बच्चा वास्तव में जिन्दा है?"

उसकी पत्नी ने उछल कर कहा—"भगवान के लिये बताओ मेरा बच्चा कहाँ है?"

रायचरण ने कहा—"आप सन्तोष रखें, आपका बच्चा इस समय भी मेरे पास है।"

अनुकूल बाबू की पत्नी ने रायचरण से अत्याधिक विनती करते हुए कहा—"मुझे बताओ।'

रायचरण ने कहा—"मै उसे परसों ले आऊँगा।"

: ४ :

रविवार का दिन था। जज साहब अपने मकान मे बेचैनी से रायचरण की प्रतीक्षा कर रहे थे। कभी वो कमरे में इधर-उधर टहलने लगते और कभी थोड़े समय के लिये आराम कुरसी पर बैठ जाते। आखिर दस बजे के लगभग रायचरण ने फलन का हाथ पकड़े हुए कमरे मे प्रवेश किया।

अनुकूल बाबू की घर वाली फलन का देखते ही दीवानो की भाँति उस की ओर लपकी और उसे बड़े जोर से गले लगा लिया। उस के नेत्रो से अश्रुओ का समुद्र उमड़ पड़ा। कभी वह उसको प्यार करती थी, कभी आश्चर्य से उसकी सूरत तकने लग जाती थी। फलन सुन्दर था और उसके कपड़े भी अच्छे थे। अनुकूल बाबू के हृदय मे भी पुत्र प्रेम का आवेश उत्पन्न हुआ, किन्तु जरा सी देर के बाद उनके पितृ प्रेम का स्थान कानूनी भावना ने ले लिया और उन्होंने रायचरण से पूछा—"भला इसका प्रमाण क्या है कि यह बच्चा मेरा है ?"

रामचरण ने उत्तर दिया—"इस का उत्तर मै क्या दूँ सरकार ! इस बात का ज्ञान तो परमात्मा के सिवाय और किसी को नहीं हो सकता कि मैने ही आपका बच्चा चुराया था।"

जब अनुकूल बाबू ने देखा कि उनकी पत्नी फलन को कलेजे से लगाये हुए है तो प्रमाण माँगना व्यर्थ है। इसके अतिरिक्त उन्हे ध्यान आया कि इस गंवार को ऐसा सुन्दर बच्चा कहाँ मिल सकता था और झूठ बोलने से क्या लाभ हो सकता है ?"

सहसा उन्हें अपने वृद्ध नौकर की बे ध्यानी याद आ गई और कानूनी मुद्रा में बोले—"रायचरण अब तुम यहाँ नहीं रह सकते।"

रायचरण ने ठंडी उसाँस भर कर कहा—"सरकार अब मैं कहाँ जाऊँ ? बूढ़ा हो गया हूँ, अब मुझे कोई नोकर भी न रखेगा। भगवान के लिये अपने द्वार पर पड़ा रहने दीजिये।"

अनुकूल बाबू की पत्नी बोली—"रहने दो, हमारा क्या नुकसान है ? हमारा बच्चा भी इसे देख कर प्रसन्न रहेगा।"

किन्तु अनूकूल बाबू की कानूनी नस भड़की हुई थी। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—"नहीं इस का अपराध बिल्कुल क्षमा नहीं किया जा सकता।"

रायचरण ने अनुकूल बाबू के पांव पकड़ते हुए कहा—'सरकार मुझे न निकालिये, मैंने आपका बच्चा नहीं चुराया था बल्कि परमात्मा ने चुराया था।"

अनुकूल बाबू को गंवार की इस बात पर और भी अधिक क्रोध आ गया। बोले-'नहीं, अब मैं तुम पर विश्वास नहीं कर सकता। तुमने मेर साथ कृतघ्नता की है।"

रायचरण ने फिर कहा—'सरकार मेरा कुछ अपराध नहीं।"

अनुकूल बाबू त्यौरी पर बल डाल कर कहने लगे-'तो फिर किस का अपराध है ?"

रायचरण ने उत्तर दिया—'मेरे भाग्य का।'

परन्तु कोई शिक्षित व्यक्ति भाग्य का अस्तित्व स्वीकार नहीं कर सकता।

फलन को जब मालूम हुआ कि वह वास्तव मे एक धनी व्यक्ति का पुत्र है तो उसे भी रायचरण की इस चेष्टा पर बहुत क्रोध आया, कि उसने इतने दिनों तक क्यों उसे कष्ट मे रखा। फिर रायचरण को देखकर उसे दया भी आ गई और उसने अनुकूल बाबू से कहा—"पिता जी इस को क्षमा कर दीजिये।

यदि आप इसको अपने साथ नहीं रखना चाहते तो इसकी थोड़ी पेनशन निर्धारित कर दें।"

यह सुनने के बाद रायचरण अपने बेटे को अन्तिम बार देख कर अनुकूल बाबू की कोठी से निकल कर चुपचाप कहीं चला गया।

महीना समाप्त होने पर अनुकूल बाबू ने रायचरण के गांव कुछ रुपया भेजा किन्तु मनिआर्डर वापस आ गया। गाँव में अब इस नाम का कोई व्यक्ति न था।

———

नई रोशनी

बाबू अनाथ बन्धु बी० ए० मे पढ़ते थे ! परन्तु कई वर्षों से निरन्तर फेल हो रहे थे। उनके सम्बन्धियों का विचार था कि वह इस वर्ष अवश्य उत्तीर्ण हो जाएंगे पर इस वर्ष उन्होने परीक्षा देना ही उचित न समझा।

इसी वष बाबू अनाथ बन्धु का विवाह हुआ था। भगवान् की कृपा से वधु सुन्दर और सदचरित्रा मिली थी। उसका नाम विन्ध्यावासिनी था किन्तु अनाथ बाबू को इस हिन्दोस्तानी नाम से घृणा थी। पत्नी को भी वह विशेषताओं और सुन्दरता में अपने योग्य न समझते थे।

परन्तु विन्ध्यावासिनी के हृदय मे हर्ष की सीमा न थी। दूसरे पुरुषो की अपेक्षा वह अपने पति को सर्वोत्तम समझती थी। ऐसा मालूम होता था कि किसी धर्म मे आस्था रखने वाले श्रद्धालु व्यक्ति की भाँति वह अपने हृदय के सिंहासन पर स्वामी की मूर्ति सजा कर सर्वदा उसी की पूजा किया करती थी।

इधर अनाथ बन्धु की सुनिये ! वह न जाने क्यों हर समय उस से रुष्ट रहते और तीखे कड़वे शब्दों से उसके प्रेम भरे मन को हर सम्भव ढंग पर जख्मी करते रहते थे। अपनी मित्र-मण्डली मे भी वह उस बेचारी को घृणा के साथ स्मरण करते थे।

जिन दिनों अनाथ बन्धु कालेज में पढ़ते थे उनका निवास ससुराल मे ही था परीक्षा का समय समीप आया किन्तु उन्होंने परीक्षा दिये बगैर ही कालेज छोड़ दिया। इस घटना पर अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा विन्ध्यावासिनी को अधिक दुःख हुआ। रात के समय उसने विनम्रता के साथ कहना आरम्भ किया "प्राण नाथ! आपने पढ़ना क्यो छोड़ दिया। थोड़े दिनों का कष्ट सह लेना कोई कठिन बात न थी। पढ़ना लिखना कोई बुरी वस्तु तो नही है।"

पत्नी की इतनी बात सुनकर अनाथ बन्धु के मिजाज का पारा १२० डिग्री तक पहुँच गया। बिगड़ कर कहने लगे—"पढ़ने लिखने से क्या मनुष्य के चार हाथ पांव हो जाते हैं? जो व्यक्ति पढ़ लिखकर अपना स्वास्थ खो बैठते है उनकी दशा अन्त में बहुत बुरी होती है।"

पति का उत्तर सुन कर विन्ध्यावासिनी ने इस प्रकार स्वयं को सांत्वना दी कि जो मनुष्य गधे या बैल की भांति कठिन परिश्रम करके किसी न किसी प्रकार सफल भी हो गये, परन्तु कुछ न बना सके तो फिर उनका सफल होना न होना बराबर है।

इसके दूसरे दिन पड़ौस में रहने वाली सहेली कमला विन्ध्यावासिनी को एक समाचार सुनाने आई। उसने कहा—"आज हमारे भाई बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। उनको बहुत कठिन परिश्रम करना-पड़ा किन्तु भगवान् की कृपा से परिश्रम सफल हुआ।"

कमला की बात सुनकर विन्ध्या ने समझा कि मेरे पति की हंसी उड़ाने को कह रही है। वह सहन कर गई और दबी आवाज से कहने लगी—"बहिन मनुष्य के लिए बी० ए० पास

कर लेना कोई कठिन बात नहीं, परंतु बी० ए० पास कर लेने से होता क्या है ? विदेशों में लोग बी० ए० और एम० ए० पास व्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं।"

: २ :

विन्ध्यावासिनी ने जो बातें कमला से कही थीं वह सब उसने अपने पति से सुनी थी, नहीं तो उस बेचारी को विलायत का हाल क्या मालूम था। कमला आई तो थी हर्ष का समाचार सुनाने किन्तु अपनी प्रिय सहेली के मुख से ऐसे शब्द सुनकर उसको बहुत दु:ख हुआ। परन्तु समझदार लड़की थी। उसने अपने हृदयगत् भाव प्रकट न होने दिए। उल्टा विनम्र हो कर बोली—"बहिन मेरा भाई तो विलायत गया ही नहीं और न मेरा विवाह ऐसे व्यक्ति से हुआ है जो विलायत हो कर आया हो, इस लिये विलायत का हाल मुझे कैसे मालूम हो सकता है।"

इतना कह कर कमला अपने घर चली गई।

किन्तु कमला का विनम्र स्वर होते हुए भी यह अत्यन्त कटु बातें विंध्या को बहुत बुरी मालूम हुईं। वह उनका उत्तर तो क्या देती, हाँ एकांत में बैठ कर रोने लगी।

इसके कुछ दिनों पश्चात् एक अजीब घटना घटित हुई जो विशेषत: वर्णन करने योग्य है। कलकत्ते से एक धनवान व्यक्ति जो विन्ध्या के पिता राज कुमार के मित्र थे, अपने कुटुम्ब सहित आये और राज कुमार बाबू के घर अतिथि बन कर रहने लगे। चूंकि उनके साथ कई आदमी और नौकर-चाकर थे इस लिये जगह बनाने को राजकुमार बाबू ने अनाथ बन्धु वाला कमरा भी

उनको साफ दिया और अनाथ बन्धु के लिये एक और छोटा सा कमरा साफ कर दिया। यह बात अनाथ बन्धु को बहुत बुरी लगी। तीव्र क्रोध की दशा मे वह विन्ध्या वासिनी के पास गये और ससुराल की बुराई करने लगे, साथ ह साथ उस निरापराधिनी का दो चार बातें सुनाई।

विन्ध्या बहुत व्याकुल और चिन्तित हुई. किन्तु वह मूर्ख न थी। उसके लिये अपने पिता को दोषी ठहराना योग्य न था किंतु पति को कह सुन कर ठढा किया। इसके बाद एक दिन अवसर पाकर उसने अपने पति से कहा कि—"अब यहाँ रहना ठीक नहीं। आप मुझे अपने घर ले चलिये। इस स्थान पर रहने में सम्मान नहीं है।"

अनाथ बन्धु परले सिरे के घंमडी व्यक्ति थे। उन में दूर दर्शिता की भावना बहुत कम थी। अपने घर पर कष्ट से रहने की अपेक्षा उन्होंने ससुराल का अपमान सहना अच्छा समझा। इस लिये आना कानी करने लगे। किन्तु विन्ध्या वासिनी ने न माना और कहने लगी—"यदि आप जाना नहीं चाहते तो मुझ अकेली को भेज दीजिये। कम से कम मै ऐसा अपमान सहन नहीं कर सकती!"

इस पर अनाथ बन्धु विवश हो घर जाने को तैयार हो गये।

: ३ :

चलते समय माता पिता ने विन्ध्या से कुछ दिनो और रहने के लिये कहा किन्तु विन्ध्या ने कुछ उत्तर न दिया। यह देख कर माता-पिता के हृदय में कुछ शंका हुई। उन्होने कहा—

"बेटी विन्ध्या । यदि हम से कोई ऐसी वैसी बात हुई हो तो उसे भुला देना ।"

बेटी ने नम्रता पूर्वक पिता के मुंह की ओर देखा । फिर कहने लगी—"पिता जी हम आप के कर्जे से कभी उऋण नहीं हो सकते । हमारे दिन यहां बड़े सुख से बीते और······।

कहते-कहते विन्धया का गला भर आया और आँखों से आँसू बहने लगे । इसके पश्चात् उसने हाथ जोड़ कर माता-पिता से विदा चाही और सब को रोता हुआ छोड़ कर पति के साथ चल दी ।

कलकत्ते के धनवान् और ग्रामीण जमीदारों मे बहुत बड़ा अन्तर है । जो व्यक्ति सर्वदा नगर में रहा हो उसे गाँव में रहना अच्छा नहीं लगता । किन्तु विन्ध्या ने पहली बार नगर से बाहर कदम रखने पर भी किसी प्रकार का कष्ट प्रकट न किया बल्कि ससुराल मे हर प्रकार से प्रसन्न रहने लगी । इतना ही नहीं, उसने अपनी नारी-सुलभ-चतुरता से बहुत शीघ्र अपनी सास का मन मोह लिया । ग्रामीण स्त्रियां उसके गुणों को देख कर प्रसन्न होती थी, परन्तु सब कुछ होते हुए भी विन्ध्या प्रसन्न न थी । अनाथ बन्धु के तीन भाई और थे । दो छोटे एक बड़ा बड़े भाई परदेश मे पचास रुपये के नौकर थे । इस से अनाथ बन्धु के घर बार का खर्च चलता था । छोटे भाई अभी स्कूल में पढ़ते थे ।

बड़े भाई की पत्नी श्यामा को इस बात का घमंड था कि उसके पति की कमाई से सब को रोटी मिलती है, इस लिये वह घर के काम काज को हाथ तक न लगाती थी ।

इसके कुछ दिनो पश्चात् बड़े भाई छुट्टी लेकर घर आये। रात को श्यामा ने पति से भाई और भौजाई की शिकायत की

पहले तो पति ने उसकी बातों को हंसी में उड़ा दिया, परन्तु जब उसने कई बार कहा तो उन्होंने अनाथ बन्धु को बुलवाया और कहने लगे—"भाई पचास रुपये में हम सब का गृहस्थ नहीं चल सकता, अब तुम को भी नौकरी की चिंता करनी चाहिये।"

यह शब्द उसने प्रेम के कोमल स्वर में कहे थे परन्तु अनाथ बंधु बिगड़ कर बोले—"भाई साहब ! दो मुट्ठी भर अन्न के लिए आप इतने रुष्ट होते हैं, नौकरी तालाश करना कोई बड़ी बात नहीं, किंतु हम से किसी की गुलामी नहीं हो सकती।" इतना कह कर वह भाई के पास से चले गये।

इन्हीं दिनों गाँव के स्कूल में थर्ड मास्टर का स्थान खाली हुआ था। अनाथ बन्धु को पत्नी और उनके बड़े भाई ने उस स्थान पर उन से काम करने के लिये बहुत कहा, किन्तु उन्होंने ऐसी तुच्छ नौकरी स्वीकार न की। अब तो अनाथ बन्धु को केवल विलायत जाने की धुन समाई हुई थ। एक दिन अपनी पत्नी से कहने लगे—"देखो आज कल विलायत गये बिन मनुष्य का सम्मान नहीं होता और न ही अच्छी नौकरी मिल सकती है। इस लिये हमारा विलायत जाना आवश्यक है तुम अपने पिता से कह कर कुछ रुपया मंगा दो तो हम चले जाएं।"

विलायत जाने की बात सुनकर ही विंध्या को बहुत दुख हुआ था, पिता के घर से रुपया मंगाने की बात से तो बेचारी की जान ही निकल गई।

: ४ :

दुर्गा पूजा के दिन समीप आए तो विंध्या के पिता ने बेटी

और दामाद को बुलाने के लिये आदमी भेजा। विंध्या खुशी-खुशी मैके आई। मां ने बेटी और दामाद को रहने के लिये अपना कमरा दे दिया। दुर्गा पूजा की रात को यह सोचकर कि पति न जाने कब वापस आएँ, विंध्या प्रतीक्षा करते-करते सो गई।

सुबह उठी तो उसने अनाथबन्धु को कमरे में न पाया। उठकर देखा तो मां का लोहे का सन्दूक खुला पड़ा था, सारी चीजे इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं और पिता का छोटा कैस बाक्स जो उसके अंदर रखा था, गायब था।

विंध्या का हृदय धड़कने लगा। उसने सोचा कि जिस बदमाश ने चोरी की है उसी के हाथों पति को भी हानि पहुँची है।

परंतु थोड़ी देर के बाद उसकी दृष्टि कागज के टुकड़े पर जा पड़ी। वह उसे उठाने लगी तो देखा कि पास ही कुंजियों का एक गुच्छा पड़ा है। पत्र पढ़ने से मालूम हुआ कि उसका पति आज ही रात प्रातः जहाज पर सवार होकर विलायत चला गया है।

पत्र पढ़ते ही विंध्या की आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। वह दुःख के आघात से जमीन पर बैठ गई और आँचल से मुंह ढाँप कर रोने लगी।

आज सारे बंगाल में खुशियां मनाई जा रही थीं किन्तु विंध्या के कमरे का दरवाजा अब तक बन्द था। इस का कारण जानने के लिये विंध्या की सहेली कमला ने दरवाजा खटखटाना आरम्भ किया, किंतु अंदर से कोई उत्तर न मिला तो वह दौड़ कर विंध्या की मां को बुला लाई। मां ने बाहर खड़ी होकर

आवाज दी—"विंध्या ! अंदर क्या कर रही है ? दरवाजा तो खोल बेटी।"

माँ की आवाज पहचान कर विंध्या ने झट आँसुओं को पूंछ डाला और कहा—"माता जी पिता जी को बुला लो।"

इस से मां बहुत घबराई, अतः उसने तुरंत पति को बुलवाया। राजकुमार बाबू के आने पर विंध्या न दरवाजा खोल दिया और माता पिता को अन्दर बुलाकर फिर दरवाजा बन्द कर लिया।

राजकुमार ने घबरा कर पूछा—"विंध्या क्या बात है ? तू रो क्यों रही है ?"

यह सुनते ही विंध्या पिता के चरणों में गिर पड़ी और कहने लगी—"पिता जी मेरी दशा पर दया करो। मैंने आपका रुपया चुराया है।"

राजकुमार आश्चर्य चकित रह गये। उसी हालत में विंध्या ने फिर हाथ जोड़ कर कहा—"पिता जी इस अभागिन का अपराध क्षमा कीजिये। स्वामी को विलायत भेजने के लिये मैंने यह नीच कर्म किया है।"

अब राजकुमार को बहुत क्रोध आया। डाँट कर बोला—"दुष्ट लड़की यदि तुझको रुपये की आवश्यकता थी तो हम से क्यों न कहा ?"

विंध्या ने डरते-डरते उत्तर दिया—"पिता जी आप उनको विलायत जाने के लिये रुपया न देते।"

ध्यान देने योग्य बात है कि जिस विंध्या ने कभी माता पिता से रुपये पैसे के लिये विनती तक न की थी आज वह पति के पाप छुपाने के लिये चोरी का इलजाम अपने ऊपर ले रही है।

विंध्या वासिनी पर चारो ओर से घृणा की बौछारें होने लगीं। बेचारी सब कुछ सुनती रही, किंतु मौन थी।

तीव्र क्रोधावेश की दशा मे राजकुमार ने बेटी को ससुराल भेज दिया।

: ५ :

इसके बाद समय बीतता गया, किंतु अनाथ बंधु ने विंध्या को कोई पत्र न लिखा और न अपनी मां की ही कोई सुधबुध ली। पर जब आखिरकार सब रुपये जो उनके पास थे खर्च हो गये तो बहुत ही घबराए और विंध्या के पास एक तार भेज कर तकाजा किया। विंध्या ने तार पाते ही अपने बहुमूल्य आभूषण बेच डाले और उनसे जो मिला वह अनाथ बाबू को भेज दिया। अब क्या था ? जब कभी रुपयों की आवश्यकता होती वह झट विंध्या को लिख देते और विंध्या जिस तरह बन पड़ता अपने रहे-सहे आभूषण बेचकर उनकी आवश्यकताओं को पूरा करती रहती। यहां तक कि बेचारी गरीब के पास कांच की दो चूड़ियो के सिवाय कुछ भी शेष न रहा।

अब अभागी विंध्या के लिये संसार में कोई सुख शेष न रहा था। सम्भव था वह किसी दिन दुखी हालत में आत्मघात कर लेती। किंतु वह फिर सोचती कि मैं स्वतंत्र नहीं, अनाथ बंधु मेरे स्वामी है। इसलिये कष्ट सहते हुए भी वह जीवन के दुख उठाने पर विवश थी। अनाथ बंधु के लिये यह जीवित रह कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर रही थी किंतु अब चूंकि उसके लिये विरह का दुख सहना कठिन हो गया था इस लिये विवश होकर उसने पति के नाम वापस आने के लिए पत्र लिखा।

इसके थोड़े ही दिनों बाद अनाथ बंधु बेरिस्टरी पास करके साहब बहादुर बने हुए वापस लौट आये परंतु देहात में बैरिस्टर साहब का निर्वाह होना कठिन था इस लिये पास ही एक कस्बे में होटल का आश्रय लेना पड़ा। विलायत रहकर अनाथ बन्धु के रहन-सहन में बहुत अंतर आ गया था। वह ग्रामीणों से घृणा करते थे। उनके खान-पान और रहन-सहन के तरीकों से यह भी मालूम न होता था कि वह अंग्रेज हैं या हिंदोस्तानी।

विंध्या यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई कि स्वामी बैरिस्टर होकर आये हैं, किंतु माँ उसकी बिगड़ी हुई आदतो को देखकर बहुत व्याकुल हुई। अंत मे उसने भी यह सोचकर दिल को समझा लिया कि आज कल का जमाना ही ऐसा है इसमें अनाथ बंधु का क्या दोष ?

इसके कुछ समय पश्चात् एक बहुत ही दर्द से भरी हुई घटना घटित हुई। बाबू राजकुमार अपने कुटुम्ब सहित नाव पर सवार होकर कहीं जा रहे थे कि सहसा नौका जहाज से टकरा कर गंगा में डूब गई। राजकुमार तो किसी प्रकार बच गये किंतु उनकी पत्नी और पुत्र का कहीं पता न लगा।

अब उनके कुटुम्ब में विन्ध्या के सिवाय कोई दूसरा शेष न रहा था। इस दुर्घटना के पश्चात् एक दिन राजकुमार बाबू विकल अवस्था मे अनाथ बधु से मिलने आये। दोनों मे कुछ देर तक बात चीत होती रही, अन्त में राजकुमार ने कहा—'जो कुछ होना था सो तो हुआ, अब प्रायश्चित करके अपनी जाति में सम्मिलित हो जाना चाहिए। क्योकि तुम्हारे सिवाय अब दुनिया में हमारा कोई नहीं, बेटा या दामाद जो कुछ भी हो अब तुम हो।

: ६ :

अनाथ बधु ने प्रायश्चित करना स्वीकार कर लिया। पंडितों से सलाह ली गई तो उन्होने कहा—'यदि इन्होंने बिलायत में रह कर मास नहीं खाया है तो इनकी शुद्धि वेद मंत्रों द्वारा की जा सकती है।'

यह समाचार सुनकर विंध्या हर्ष से फूली न समाई और अपना सारा दुख भूल गई। आखिर एक दिन प्रायश्चित् की रस्म अदा करने के लिए रखा गया।

बड़े आनद का समय था. चहुं ओर वेद मंत्रों की गूंज सुनाई देती थी। प्रायश्चित के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराया गया और इसके परिणाम स्वरूप बाबू अनाथ बंधु नये सिरे से बिरादरी में सम्मिलित कर लिये गये।

परंतु ठीक उस समय जब राजकुमार बाबू ब्राह्मणों को दक्षिणा दे रहे थे, एक नौकर ने कार्ड लिये हुए घर में प्रवेश किया और राजकुमार से कहने लगा—'बाबू जी! एक मेम आई हैं।'

मेम का नाम सुनते ही राजकुमार बाबू चकराए, कार्ड पढ़ा। उस पर लिखा था—'मिसेज़ अनाथ बधु सरकार।'

इससे पहिले की राजकुमार बाबू हॉ या ना का कुछ उत्तर देते एक युवती, गोरे रंग की यूरोपियन स्त्री खट-खट करती अन्दर आ उपस्थित हुई।

पंडितो ने जो उसको देखा, तो दक्षिणा लेनी भूल गये। घबरा कर जिधर जिसके सींग समाए निकल गये। इधर मेम साहिबा ने जब अनाथ बंधु को न देखा तो बहुत विकल हुई और उनका

नाम ले लेकर आवाज़ें देने लगीं।

इतने में अनाथ बंधु कमरे से बाहर निकले। उन्हे देखते ही मेम साहिबा 'माईडीयर' कह कर झट उनसे लिपट गई।

यह दशा देख कर घर के पुरोहित भी अपना बांरिया बंधना संभाल कर विदा हो गये। उन्होने पीछे मुड़ कर भी न देखा।

मातृ भूमि से दूर

मेरी लड़की मिनि पाँच वर्ष की छोटी आयु में ही इतनी बातें करती थी कि शायद ही वह एक मिनिट के लिए चुप रहती हो। उसकी मां तो उससे बहुत वि ल रहा करती थी, किन्तु मैं उसकी भोली बातों से प्रसन्न होता था। मैंने जान लिया था कि मौन हना उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। मेरी और मिनि की बातचीत बच्चों की भावनाओं से प्रेम करने वालों के लिये बहुत ही मनोरंजक होती थीं।

एक दिन जब कि मैं अपने उपन्यास को पूरा करने में लीन था, सहसा मिनि मेरे कमरे में प्रविष्ट हुई और बाल सुलभ चंचलता के साथ अपना हाथ मेरे हाथ पर रख कर कहने लगी—"पिता जी! मुझे यह तो बता दीजिये कि रामदयाल वर्मा को अग्गू गवा क्यों कहता है ? वह कुछ जानता भी है या यूं ही।"

अभी मैं इसका उत्तर देना ही चाहता था कि उसने तुरन्त दूसरा प्रश्न कर दिया—"और क्यों पिता जी! क्या यह सत्य है भोला कहता था कि बादल भी एक हाथी होता है। जब वह अपनी सूंड से पानी फेंकता है तो पानी बरसता है।"

मैंने इसका उत्तर देने का इरादा किया ही था कि उसने

से लदे हुए ऊँटों की लम्बी पंक्ति और सौदागरों की ऊँची ऊँची पगड़ियां देख रहा हूं। प्रायः मेरी यह तल्लीनता उस समय दूर होती जब मिनि की मा मुझ से कहती, देखो उस आदमी से सावधान रहना।

मिनि की मां कमजोर हृदय की स्त्री थी। यदि वह सड़क पर जरा सा शोर सुनती तो यह समझ कर दौड़ जाती कि संभवतः डाकू आ गये या शराबी लड़ रहे हैं। समझदार और अक्लशद होते हुए भी वह काल्पनिक भयानक घटनाओं की चिन्ता में रहा करती और कावली से तो वह बुरी तरह भयभीत रहती थी। किसी समय तो उसका यह सन्देह इतना गहरा हो जाता कि मुझे बेइख्त्यार हंसी आ जाती। किन्तु वह मुझे हसता देखकर झुंझला जाती और पूंछती--"क्या तुम्हे यह नहीं मालूम कि कावली बच्चो को चुरा ले जाते हैं और क्या दास-प्रथा अब तक काबुल में प्रचलित नहीं है? सम्भव है वह लम्बे डील-डौल का आदमी अपने आने जाने में किसी दिन मेरी बच्ची को भी चुरा ले जाए।"

मै उसके प्रश्नो से तग आकर कहता—"मिनि की मा! तुम्हारा यह विचार वैसे किसी सीमा तक ठीक है कि कावली ऐसी चेष्टा करते है, तो भी उस व्यक्ति से ऐसा होना असम्भव है।

किन्तु मेरी उन बातों से उन की साँत्वना न होती। मैंने भी इस बीच में उसके आने जाने पर विशेष ध्यान न दिया था। वह उसी प्रकार निरन्तर आता रहा। उसका स्वभाव था कि हर साल के आरम्भ में काबुल चला जाता और कुछ दिनो के बाद कर्जदारो से रुपया वसूल करने के लिए फिर वापस आ जाता।

एक बार काबली ने पूछा—"मिनि तुम अपने ससुराल कब जाओगी।"

भोली मिनि उसके प्रश्न को न समझ सकी। वह सोच रही थी कि ससुराल के क्या अर्थ होते हैं। इसलिये उसने यही प्रश्न उससे पूछा—"क्या तुम वहाँ जाओगे।"

उस काबली ने किसी खयाली शत्रु को मारने के लिए सख्ती से घूंसा उठाया और कठोर स्वर मे बोला—"हम उस ससुरे को मार डालेगा।"

उसकी इस भाव भगिमा पर मिनि बहुत हंसी। यहाँ तक कि उसके पेट मे बल पड़ गए। काबली भी उसके साथ हंसता रहा।

: २ :

बागों में हेमन्त ऋतु आने लगी थी। प्रातः का समय था और यद्यपि मैं उस समय कलकत्ते ही के एक भाग में रह रहा था किन्तु अपनी कल्पना शक्ति के बल पर मैं सारे संसार में सैर कर रहा था। दूसरे देशो का नाम सुनकर मेरी इच्छाओं मे ज्वार भाटा आ जाता था और किसी नये व्यक्ति को सड़क पर चलता हुआ देख कर उसके देश की कल्पना में ऐसा डूब जाता था कि वहाँ के पहाड़ों के आकर्षक दृश्य, तलहटियों और उपत्य-काओं की हरियाली और घने जंगलों में रहने वाले निर्धन ग्रामीणों के छोटे-छोटे झोपड़े मेरी आँखों में फिरने लगते और मैं उन मोहक और प्रभावशाली दृश्यों में विचरण करने लगता। यदि किसी समय मेरे पास काबली बैठा हुआ होता तो काबुल के पहाड़ों की ऊँची चोटियों और घाटियों के उतार-चढ़ाव मेरे सामने फिर जाते और ऐसा मालूम होता कि मैं अपनी आँखों

से लदे हुए ऊँटो की लम्बी पंक्ति और सौदागरों की ऊँची ऊँची पगड़ियां देख रहा हूं। प्रायः मेरी यह तल्लीनता उस समय दूर होती जब मिनि की मां मुझ से कहती, देखो उस आदमी से सावधान रहना।

मिनि की मां कमजोर हृदय की स्त्री थी। यदि वह सड़क पर जरा सा शोर सुनती तो यह समझ कर दौड़ जाती कि संभवतः डाकू आ गये या शराबी लड़ रहे हैं। समझदार और अक्लशद होते हुए भी वह काल्पनिक भयानक घटनाओं की चिन्ता मे रहा करती और काबली से तो वह बुरी तरह भयभीत रहती थी। किसी समय तो उसका यह सन्देह इतना गहरा हो जाता कि मुझे बेइख्त्यार हंसी आ जाती। किन्तु वह मुझे हंसता देखकर झुंझला जाती और पूछती--"क्या तुम्हे यह नहीं मालूम कि काबली बच्चो को चुरा ले जाते हैं और क्या दास-प्रथा अब तक काबुल में प्रचलित नहीं है? सम्भव है वह लम्बे डील-डौल का आदमी अपने आन जाने मे किसी दिन मेरी बच्ची को भी चुरा ले जाए।"

मै उसके प्रश्नो से तंग आकर कहता—"मिनि की मां! तुम्हारा यह विचार वैसे किसी सीमा तक ठीक है कि काबली ऐसी चेष्टा करते है, तो भी उस व्यक्ति से ऐसा होना असम्भव है।

किन्तु मेरी उन बातो से उन की सांत्वना न होती। मैंने भी इस बीच में उसके आने जाने पर विशेष ध्यान न दिया था। वह उसी प्रकार निरन्तर आता रहा। उसका स्वभाव था कि हर साल के आरम्भ में काबुल चला जाता और कुछ दिनों के बाद कर्जदारो से रुपया वसूल करने के लिए फिर वापस आ जाता।

: ३ :

आठ बज चुके थे, सरदी अभी तेज थी, लोग अपने अपने कामो पर जा रहे थे। सूर्य की सुनहरी किरणे कांपती हुई मेरे कमरे में प्रवेश कर रही थीं और मैं अपनी कापियों के शुद्ध करने मे लीन था, कि सड़क पर शोर गुल की आवाज सुनाई दी। थोड़ी देर के बाद मैने देखा कि काबली को पुलिस वाले पकड़े लिए जा रहे हैं। मै दौड़कर मनुष्यों के उस समूह के पास गया और लोगों से पूछा तो मालूम हुआ कि काबली का कुछ रुपया किसी पर बाकी था, उसने देने से इन्कार किया आपस मे लड़ाई हुई और काबली ने गुस्से में आकर उसे चाकू मार दिया।

इस समय काबली का मुख क्रोध से लाल था और वह पुलिस के आदमियो को बुरा भला कह रहा था।

रहमान के शरीर में (क्योंकि यह ही उस काबली का नाम था) मेरी आवाज सुनकर एक विद्युत प्रभा सी दौड़ गई और उसका मुख प्रसन्नता से चमकने लगा। इस समय उसके पास थैला न था जिसे देखकर मिनि हाथी के विषय में उससे बात चीत करती। इसलिये वह पहली बात याद करके पूछने लगी—"क्या तुम अपनी ससुराल जा रहे हो?"

काबली ने हँस कर उत्तर दिया—"हाँ प्यारी लड़की मै वहीं जा रहा हूँ।" इतना कहने के बाद उसका मुख क्रोधाग्नि से चमक उठा। उसने हथकड़ी पहने हुये हाथों को हिला कर कहा—"खेद है यदि इस समय मेरे हाथ स्वतन्त्र होते तो उन बदमाश ससुरों को काफी दंड देता, किन्तु विवश हूँ।"

पुलिस वाले काबली को न्यायालय ले गये, जहाँ उसका

मुकद्दमा पेश हुआ और प्राणघातक आक्रमण के अपराध में कुछ वर्ष के लिए बन्दी बना दिया गया।

: ४ :

दिन बीतते गये, ऋतु बदलती गई, फसलें समाप्त होती रहीं। अब काबली किसी को भी स्मरण न था। मस्तिष्क ने उसे बिलकुल विस्मृत कर दिया था। मैं उस सड़क से लगे कमरे में अपने कामों में तल्लीन रहा और कभी उस गरीब बन्दी का विचार तक न आया जो बन्दीगृह की तंग और अन्धेरी कोठरी में अपनी यातना के दिन बिता रहा था। यह आरोप, साहब मुझी पर नहीं, बल्कि मिनि को भी अपना वह पुराना और प्रिय मित्र कभी याद न आया। मिनि में जवानी की उमंगे थीं, और वह प्रायः अपनी समवयस्क सहेलियों में रहा करती थी।

रात दिन सुबह और शाम में परिवर्तित होते रहे, महीने आये और चले गये, वर्ष आये और समाप्त हो गये। फिर वही शरद ऋतु थी। मिनि के विवाह का सब सामान पूरा हो चुका था। पूजा की छुट्टियों में विवाह का दिन निश्चित हो गया। घर वालों से बिछुड़ने का वह समय समीप आता जाता था जिसमें माता पिता के हृदयों का संतोष सर्वदा के लिये उन से छिन जाने वाला था।

प्रातः काल का समय था और सूर्य की सुनहरी किरणें कलकत्ते के बन्द मकानों पर पड़ रही थीं। पानी बरस कर खुल चुका था। वायु बहुत शीतल बह रही थी। आज मिनि के विवाह का दिन था। प्रातःकाल से ही बाजे बजने लगे, जिनकी आवाजों के साथ मेरा हृदय बिकल हो जाता था। विरह के कठिन क्षणों को भैरवी का कारुणिक राग और भी अधिक करुणामय बन

रहा था' जैसे-जैसे प्रभात समाप्त होता गया अतिथियो की संख्या बढ़ती गई शामियाने लगाये जा रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति बहुत ही संलग्नता के साथ कमरों और दालानो के सजाने में लगा हुआ था और मैं उसी कमरे मे अपने उपन्यास के कथानक को देख रहा था कि सहसा एक व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश किया और सलाम करके मौन खड़ा हो गया। कुछ देर तक तो मैं उसे पहचान न सका। किंतु जैसे ही वह मुस्कुराया, मैने तुरंत जान लिया कि रहमान है। अब न उसके पास वह थैला था, न लम्बे-लम्बे बाल थे और न पहले सी शक्ति और निर्भयता।

मैने उससे पूछा—"रहमान कब आये ?"

उसने रुकते हुए कहा—"मैं कल अपनी अवधि पूरी करके बाहर आया हूँ।"

यह सुनते ही मेरा हृदय धड़कने लगा। मैने अपनी आयु मे कभी ऐसे मनुष्य से बातें न की थीं जिसने किसी पर प्राण घातक आक्रमण किया हो। अब मेरा हृदय तीव्रगति से धड़क रहा था और विचार कर रहा था कि अच्छा होता यदि यह न आता।

"आज मै विवाह के कामों में तल्लीन हूँ।" सारांश यह कि मैने उस से कहा—"अच्छा होता कि तुम और किसी समय आते।"

यह सुनते ही वह जाने के लिए मुड़ा किंतु द्वार के समीप जाकर रुक गया और पूछने लगा— 'क्या मै अपनी छोटी बच्ची को देख सकता हूँ।

आह ! उसका विचार था कि मिनि अब भी वही छोटी सी मिनि होगी जो उसे 'काबली वाला' 'काबली वाला' पुकारा करती

थी। वह समझता था कि आज भी हम दोनों उसी प्रकार निस्सं-कोच भाव से खेलेंगे। आज भी वह मिनि के लिए एक कागज़ मे कुछ अंगूर और किशमिश लपेट कर लाया था। मैंने उस से फिर एक बार कहा—"मैं आजकल बहुत काम में लगा हुआ हू, अधिक बात-चीत का समय नहीं, अच्छा होता कि तुम फिर किसी समय आते।"

यह बात सुनकर वह निराश हो गया और मेरी ओर कामना से भरी दृष्टि से देखता हुआ सलाम करके चला गया।

उसके जाने के तुरन्त पश्चात् मेरा हृदय घबराने लगा। मैं अपनी कुर्सी से उठा और उसको बुलाने जा ही रहा था कि वह स्वय वापस आ गया और कुछ चीजे निकाल कर कहने लगा—"यह कुछ भेट मै अपनी छोटी बच्ची के लिये लाया था, कृपया यह उसे दे दीजियेगा।"

मैंने वह सब वस्तुएॅ उसके हाथ से ले लीं और मूल्य के रूप में उसे कुछ देने लगा, किन्तु उसने मेरा हाथ पकड़ कर बड़ी नम्रता से कहा—'बस मेरे लिये आपकी इतनी सहानुभूति ही बहुत है कि आप कभी-कभी इस गरीब देशवासी को स्मरण कर लिया करे। मैं तो प्रेम का सेवक हूं, मुझे रुपये की आवश्य-कता नही। आप की मिनि की तरह मेरी भी एक लड़की घर पर है जब वह मुझे स्मरण हो आती है तो मै विकल हो जाता हूं और उसके स्नेह आवेश मे मिनि के लिये यह कुछ सामग्री ले आता हूं। इस सामग्री से भगवान् जाने मुझे कुछ लाभ की इच्छा तो नहीं होती।

यह कह कर उसने जेब से एक स्याह लगा कागज़ का टुकड़ा निकाला और सावधानी से खोल कर मेज़ पर रख दिया।

यह उसकी दो हजार कोस दूर रहने वाली छोटी सी लडकी के स्याही भरे हाथ का चिन्ह था जिसे वह अपनी बच्ची की निशानी समझ कर प्राणों से प्रिय रखता था।

यह देख कर मेरे नेत्रों में आँसू भर आये और मैने उस वास्तविकता को सर्वथा विस्मृत कर दिया, कि वह एक गरीब मेवा बेचने वाला काबली है और मैं ··किन्तु क्या महानता में भी मैं उससे अधिक हूं ?···नहीं, बिल्कुल नहीं। वह भी किसी का सहृदय पिता है। उस नन्हीं बच्ची के हाथ का चिन्ह देख कर जो इस स्थान से बहुत दूर अफगानिस्तान की पहाड़ियों में स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती है, मेरी भावनाओं मे उतार-चढ़ाव उत्पन्न हो गया और बिना किसी बाधा के मुझे अपनी मिनि याद आ गई। स्त्रियो के विरोध करने पर भी मैंने उसे अपने पास बुलवा भेजा।

वह विवाह के लाल रेशमी वस्त्र पहने हुए आई। माथे पर सदली टीका लगा हुआ था और शरीर लज्जा से शकुचित हो रहा था। काबली उसे इस अवस्था मे देखकर थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर सहसा कुछ स्मरण करके बोला—"बच्ची क्या तुम अपनी सुसराल जा रही हो ?"

इस समय मिनि बचपन में काबली की ज़बान से सुने हुए इस शब्द का अर्थ समझ गई; किंतु उत्तर देने की अपेक्षा वह शर्म से और भी सिमटी और अपनी आँखो को झुकाए मौन खड़ी रही।

आखिरकार जब मिनि वापस चली गई तो रहमान बे अख्त्यार हो गया और ठन्डी साँस भर कर पृथ्वी पर बैठ गया। सम्भवत: उसने विचारा होगा कि मेरी बेटी अब जवान हो गई होगी।

विवाह की नौबत बजने लगी। शरद् ऋतु के कॉपते हुए सूर्य ने अपनी सुनहरी किरणे सारे संसार पर डालनी आरम्भ कर दी। इस वातावरण मे रहमान की कल्पना अफगानिस्तान के लम्बे चौड़े मैदानों और ऊंचे पहाड़ो से अपना सिर टकराती फिर रही थी। मैने उसे अपने देश जाने के लिए एक नोट भेट किया और कहा--"अपने देश जाओ और अपनी बिछड़ी हुई बच्ची से मिलो। सम्भवतः तुम दोनों का यह मिलन मेरी लड़की के लिए ऋद्धि सिद्धि का कारण बने।"

एक बड़ी रकम के हाथ से निकल जाने के कारण मुझ को शोभा के बहुत से व्यर्थ और अनावश्यक सामानों में कमी करनी पड़ी। इससे स्त्रियां बहुत रुष्ट हुईं, तथापि मैंने बिजली और फौजी बाजा बन्द करा दिया। उस समय मेरी आंखे दूर बहुत दूर देश मे, ससार के असीमित हर्ष का वह मोहक दृश्य देख रही थी जब एक इकलौती लड़की अपने गरीब पिता के स्नेहमय हृदय पर सिर डाले खड़ी होगी।

कवि और कविता

राजमहल के सामने भीड़ लगी हुई थी। एक नवयुवक सन्यासी बीन पर प्रेम राग अलाप रहा था। उसका मधुर स्वर गूंज रहा था। उसके मुख पर दया और सहृदयता के भाव प्रकट हो रहे थे। स्वर के उतार-चढ़ाव और बीन की झंकार दोनों ने मिलकर बहुत ही आनन्दप्रद स्थिति उत्पन्न कर रखी थी। दर्शक झूम-झूम कर आनन्द प्राप्त कर रहे थे।

गाना समाप्त हुआ, दर्शक चौंक उठे। रुपये पैसे की वर्षा होने लगी। एक-एक करके भीड़ छटने लगी। नवयुवक सन्यासी ने सामने पड़े हुए रुपये पैसों को बड़े ध्यान से देखा और आप ही आप मुस्कुरा दिया। उसने उस बिखरी हुई दौलत को एकत्रित किया और फिर उसे ठोकर मार कर बिखरा दिया। इसके पश्चात् बीन उठा कर एक ओर को चल दिया।

: २ :

राजकुमारी माया ने भी उस नव युवक सन्यासी का गाना सुना था। दर्शक प्रतिदिन वहां आते और सन्यासी को न पाकर निराश हो वापिस चले जाते थे। राजकुमारी माया भी प्रतिदिन राज महल के सामने देखती और घंटों देखती रहती। जब रात्रि का अन्धकार सर्वत्र अपना आधिपत्य जमा लेता तो राजकुमारी

खिड़की में से उठती । उठने से पहले वह सर्वदा एक निराशा-जनक करुणामय आह खींचा करती थी ।

इसी प्रकार दिन हफ्ते और महीने बीतते गये । वर्ष भी समाप्त हो गया, परन्तु युवक सन्यासी फिर दिखाई न दिया । जो व्यक्ति उसकी खोज मे आया करते थे, धीरे-धीरे उन्होने वहाँ आना छोड़ दिया वह उस घटना का भूल गये, किन्तु राजकुमारी माया....... ... ।

राज कुमारी माया उस युवक सन्यासी को हृदय से न भुला सकी । उसकी आँखों मे हर समय उसका चित्र फिरता था । होते-होते उसने भी गाने का अभ्यास किया । वह प्रतिदिन अपने उद्यान मे जाती और गाने का अभ्यास करती । जिस समय रात्रि की नीरवता मे सोहनी की लय गूंजती तो सुनने वाले ज्ञान शून्य हा जाते थे ।

: ३ :

राजकवि अनगशेखर एक नौजवान व्यक्ति था । उस की कविता प्रभावशाली और जोरदार होती थी । जिस समय वह दरबार में अपनी कविता गायन के साथ पढ़कर सुनाता तो सुनने वालों पर एक मादकता सी छा जाती, शन्यता का राज्य हर ओर होता । राजकुमारी माया को कविता से प्रेम था । सम्भवतः वह भी अनंगशेखर की कविता सुनने के लिये विशेष दरबार में आ जाती थी ।

राजकुमारी की उपस्थिति में अनगशेखर की जबान लड़-खड़ा जाती । यह ज्ञान-शून्य सा खोया-खोया हो जाता था, किन्तु इस के साथ ही उसकी भावनाएं जागृत हो जाती थीं । वह झूम-झूम कर उपमा और उदाहरणो को सन्मुख रखता ।

सुनने वाले भी अनुरक्त हो जाते। उसके हृदय में भी प्रेम की नदी लहरे लेने लगती। उसको अनंगशेखर से कुछ प्रेम अनुभव होता। किन्तु तुरन्त ही उसकी आँखे खुल जातीं और युवक सन्यासी का चित्र उसके सामने फिरने लगता। ऐसे मौके पर उसकी आँखो से आंसू छलकने लगते। अनंगशेखर आंसू भरी आँखों पर दृष्टि डालता तो स्वयं भी आंसुओ के प्रवाह मे बहने लगता। उस समय वह शस्त्र डाल देता और वह अपनी जबान से अपने आप ही कहता—"मै अपनी पराजय मान चुका।"

कवि अपनी धुन मे मस्त था। चहुँ ओर प्रसन्नता और आनन्द दृष्टिगोचर होता था। वह अपने विचारों मे क्या मगन था जैसे प्रकृति के आंचल मे रंगरलियां मना रहा था।

सहसा वह चौंक पड़ा। उसने आंखे फाड़-फाड़ कर अपने चहुं ओर दृष्टि डाली और फिर एक उसास ली। सामने एक कागज पड़ा था। उस पर कुछ पंक्तियाँ लिखी हुई थीं। रात्रि का अन्धकार फैलता जा रहा था। वह वापस हुआ।

राज महल समीप था और उससे मिला हुआ उद्यान था। अनंगशेखर बे काबू हो गया, राज कुमारी की खोज उसको बरबस उद्यान के अन्दर ले गई।

चन्द्रमा की किरणे जलश्रोत की लहरो से अठखेलियां कर रही थीं, प्रत्येक दिशा म जूही और मालती की गध प्रसारित थी, कवि आनन्दप्रद दृश्य के देखने मे तल्लीन हो गया। भय और शका ने उसे आ दबाया। वह आगे कदम न उठा सका समीप ही एक घना वृक्ष था। उसकी छाया मे खड़े होकर वह उद्यान की बहार का आनन्द प्राप्त करने लगा। इसी बीच में वायु का एक मधुर झोंका आया। उसने अपने शरीर में एक

कम्पन अनुभव किया। इसके बाद उद्यान से एक मधुर स्वर गूंजा, कोई गा रहा था। वह अपने आपे में न था कुछ खो सा गया। मालूम नहीं इस स्थिति में वह कितनी देर खड़ा रहा। जिस समय वह होश में आया, तो देखा कोई पास खड़ा है। वह चौंक उठा उसके सामने राजकुमारी माया खड़ी थी।

अनगशेखर का सिर नीचा हो गया। राज कुमारी ने मुस्कुराते हुए होटों से पूछा—"अनगशेखर! तुम यहां क्यो आये?"

कवि ने सिर उठाया, फिर कुछ लजाते हुए राज कुमारी की ओर देखा, फिर भी मुख से कुछ न कहा।

राजकुमारी ने फिर पूछा—"तुम यहा क्यों आये।"

इस बार कवि ने साहस से काम लिया। हाथ में जो पत्र था वह राज कुमारी को दे दिया। राज कुमारी ने कविता पढ़ी। उस कविता को अपने पास रखना चाहा किन्तु वह छूट कर हाथ से गिर गई। राज कुमारी तीर की भांति वहां से चली गई। अब कवि से सहन न हो सका, वह ज्ञान शून्य होकर चिल्ला उठा—"माया माया।"

परन्तु अब माया कहां थीं।

: ४ :

राज दरबार में एक युवक आया, दरबारी चिल्ला उठे—"अरे यह तो वही सन्यासी है जो उस दिन राज महल के सामने गा रहा था।"

राजा ने मालूम किया—"यह युवक कौन है?"

युवक ने उत्तर दिया—"महाशय मै कवि हूँ।"

राज कुमारी उस युवक को देखकर चौंक उठी।

राज कवि ने भी उस युवक पर दृष्टि डाली, मुख फक हो

गया। पास ही एक व्यक्ति बैठा हुआ था उसने कहा—"वाह! यह तो एक भिक्षुक है।"

राज कवि बोल उठा—"नहीं उसका अपमान न करो, वह कवि है।"

चहुं ओर सन्नाटा छा गया। महाराज ने युवक से कहा—"कुछ अपनी कविता सुनाओ।"

युवक आगे बढ़ा, उसने राज कुमारी की ओर, राज कुमारी ने उसको देखा। स्वाभिमान अनुभव करते हुए उसने कदम आगे बढ़ाए।

राज कवि ने भी यह स्थिति देखी तो उसके मुख पर हवाइयां उड़ने लगी।

युवक ने अपनी कविता सुनानी आरम्भ की। प्रत्येक चरण पर "वाह वाह" की ध्वनियें गूंजने लगीं। किसी ने ऐसी कविता आज तक न सुनी थी।

युवक का मुख स्वाभिमान और प्रसन्नता से दमक उठा। वह मस्त हाथी की भांति झूमता हुआ आया और अपने स्थान पर बैठ गया। उसने एक बार फिर राज कुमारी की ओर देखा और इसके पश्चात राज कवि की ओर।

महाराज ने राज कवि से कहा—"तुम भी अपनी कविता सुनाओ।"

अनंगशेखर चेतना शून्य-सा बैठा था उसके मुख पर निराशा और असफलता की झलक प्रकट हो रही थी।

महाराज फिर बोले—"अनगशेखर! किस चिन्ता मे निमग्न हो? क्या इस युवक कवि का उत्तर तुम से नहीं बन पड़ेगा?"

यह अपमान कवि के लिए असहनीय था। उसकी आँखे

रक्तिम हो गई, वह अपने स्थान से उठा और आगे बढ़ा। उस समय उसके कदम डगमगा रहे थे।

आगे पहुँच कर वह रुका, हृदय खोलकर उसने अपनी काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया। चहुँ ओर शून्यता और ज्ञान शून्यता छा गई, श्रोता मूर्ति सी बन कर रह गये।

राज कवि मौन हो गया। एक बार उसने चहुँ ओर दृष्टिपात किया। उस समय राजकुमारी का मुख पीला था। उस युवक का घमण्ड टूट चुका था। धीरे-धीरे सब दरबारी नींद से चौंके, चहु ओर से 'धन्य है, धन्य है' की ध्वनि गूंजी। महाराज ने राज सिंहासन से उठकर कवि को अपने हृदय से लगा लिया कवि की यह अन्तिम विजय थी।

महाराज ने निवेदन किया—'अनंग। मांगो क्या मांगते हो ? जो मांगोगे दूंगा।"

राज कवि कुछ देर तक सोचता रहा। इसके बाद उसने कहा—'महाराज मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मै केवल राज-कुमारी का इच्छुक हूं।'

यह सुनते ही राजकुमारी को गश आ गया। कवि ने फिर कहा—"महाराज आप के कथन के अनुसार राजकुमारी मेरी हो चुकी अब जो चाहूं कर सकता हूं" यह कह कर उसने युवक कवि को अपने समीप बुलाया और कहा—

"मेरे जीवन का मुख्य उद्देश्य यह था कि राजकुमारी का प्रेम प्राप्त करूं। तुम नहीं जानते कि राजकुमारी की प्रसन्नता और सुख के लिये मै अपने प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार हूं। हा ! ऐ युवक ! तुम इनमें से किसी बात से परिचित नहीं हो किन्तु थोड़ी देर के पश्चात् तुम को ज्ञात हो जाएगा कि मै ठीक कहता था या नहीं।"

कवि की ज़बान रुक गई, उसका स्वर भारी हो गया, सिल-सिला जारी रखते हुए कहा—'क्या तुम जानते हो कि मैंने क्या देखा ? नहीं ! और इसका न जानना ही तुम्हारे लिए अच्छा है। सोचता था, जीवन सुख से व्यतीत होगा, परन्तु यह आशा भ्रामक सिद्ध हुई। जिससे मुझे प्रेम है वह अपना हृदय किसी और को भेंट कर चुकी है। जानते हो अब राजकुमारी को मैं पाकर भी प्रसन्न न हो सकूंगा, क्योंकि राजकुमारी प्रसन्न न रह सकेगी। आओ, ऐ युवक आगे आओ ! तुम्हें मुझ से घृणा हो तो बेशक ही हुआ करे, आओ आज मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति तुम्हें सौंपता हूँ।'

युवक कवि मौन हो गया ! किन्तु उसका मौन क्षणिक था। सहसा उसने महाराज से कहा—'महाराज एक विनती है और वह यह कि मेरे स्थान पर इस युवक को राज कवि बनाया जाए।'

राज कवि के कदम लड़खड़ाने लगे। देखते-देखते वह पृथ्वी पर आ रहा। अन्तिम वार पथराई हुई दृष्टि से उसने राजकुमारी की ओर देखा, यह दृष्टि अर्थमयी थी। वह कवि दरबार से कह रही थी—'मेरी प्रसन्नता यही है कि तुम प्रसन्न रहो ! विदा !"

इसके पश्चात् कवि ने अपनी आँखें बन्द कर लीं और ऐसी बन्द कीं कि फिर न खुलीं।

———

यह स्वतंत्रता

पाठक चक्रवर्ती अपने मुहल्ले के लड़कों का सरदार था। सब उसकी आज्ञा मानते थे। यदि कोई उस के विरुद्ध जाता तो उस पर आफत आ जाती थी, सब मुहल्ले के लडके उसको मारते थे। आखिरकार बेचारे को विवश होकर पाठक से क्षमा मांगनी पडती। एक बार पाठक ने एक नया खेल सोचा। नदी के किनारे एक लकड़ी का बडा लट्ठा पड़ा था, जिसकी नौका बनाई जाने वाली थी। पाठक ने कहा—"हम सब मिल कर उस लट्ठे को लुढ़काएँ, लट्ठे का स्वामी हम पर क्रुद्ध होगा और हम सब उसका मज़ाक उड़ाकर खूब हँसेंगे।' सब लड़कों ने उसका अनुमोदन किया।

जब खेल आरम्भ होने वाला था तो पाठक का छोटा भाई मक्खन बिना किसी से एक भी शब्द कहे उस लट्ठे पर बैठ गया लडके रुके और एक क्षण तक मौन रहे फिर एक लड़के ने उसको धक्का दिया, परन्तु वह न उठा। यह देख कर पाठक को क्रोध आया। उसने कहा—"मक्खन यदि तू न उठेगा तो इस का बुरा परिणाम होगा।" किन्तु मक्खन यह सुनकर और आराम से बठ गया। अब यदि पाठक कुछ हल्का पड़ता, तो उसकी बात जाती रहती। बस उसने आज्ञा दी कि लट्ठा लुढ़का दिया जाए।

लड़के आज्ञा पाते ही एक दो तीन कह कर लट्ठे की ओर दौड़े और सब ने जोर लगाकर लट्ठे को धकेल दिया। लट्ठे को फिसलता और मक्खन को गिरता देखकर लड़के बहुत प्रसन्न हुए किन्तु पाठक कुछ भयभीत हुआ। क्योंकि वह जानता था कि इसका परिणाम क्या होगा।

मक्खन पृथ्वी पर से उठा और पाठक को लातें और घूंसे मारकर घर की ओर रोता हुआ चल दिया।

पाठक को लड़कों के सामने इस अपमान से बहुत खेद हुआ। वह नदी किनारे मुँह हाथ धोकर बैठ गया और घास को तोड़-तोड़ कर चबाने लगा। इतने में एक नौका वहाँ आई जिस में एक अधेड़ आयु वाला व्यक्ति बैठा था। उस व्यक्ति ने पाठक के समीप आकर मालूम किया—'पाठक चक्रवर्ती कहाँ रहता है।

पाठक ने उपेक्षा भाव से बिना किसी ओर संकेत किये हुए कहा— 'वहा" और फिर घास चबाने लगा।

उस व्यक्ति ने पूछा—'कहाँ?'

पाठक ने अपने पाँव फैलाते हुए उपेक्षा से उत्तर दिया—"मुझे नहीं मालूम।"

इतने में उसका घर का नौकर आया और उसने उस से कहा—'पाठक तुम्हे तुम्हारी माँ बुला रही है।'

पाठक ने जाने से इन्कार किया, किंतु नौकर चूंकि मालकिन की ओर से आया था, इस वजह से वह उसको जबर्दस्ती मारता हुआ ले गया।

पाठक जब घर आया तो उसकी माँ ने क्रोध में आकर पूछा—"तूने मक्खन को फिर मारा?'

पाठक ने उत्तर दिया—'नहीं तो, तुम से किसने कहा?"

मा ने कहा—"झूठ मत बोल, तूने मारा है।"

पाठक ने फिर उत्तर दिया—"नहीं यह बिल्कुल असत्य है, तुम मक्खन से पूछो।"

मक्खन चूंकि कह चुका था कि मुझे मारा है इसलिये उसने अपने शब्द कायम रक्खे और दोबारा फिर कहा—"हॉ हॉ तुमने मारा है।"

यह सुनकर पाठक को क्रोध आया और मक्खन के समीप आकर उसे मारना आरम्भ कर दिया। उसकी मा ने उसे तुरन्त बचाया और पाठक को मारने लगी। उसने अपनी मां को धक्का दे दिया। धक्के से फिसलते हुए उसकी मां ने कहा—अच्छा तू अपनी मां को भी मारना चाहता है।"

ठीक उसी समय वह अधेड आयु का व्यक्ति घर में आया और कहने लगा—"क्या किस्सा है?"

पाठक की मां ने पीछे हटकर आने वाले को देखा और तुरन्त ही उसका क्रोध आश्चर्य में परिवर्तित हो गया। क्योंकि उसने अपने भाई को पहचाना और कहा—"क्यों दादा। तुम यहां? कैसे आये?" फिर उसने नीचे को झुकते हुए उसके चरण छुए।

उसका भाई विशम्भर उसके विवाह के पश्चात् बम्बई चला गया था, वह व्यापार करता था। अब वह कलकत्ते अपनी बहिन से मिलने आया, क्योंकि बहिन के पति की मृत्यु हो गई थी।

कुछ दिन तो बड़ी प्रसन्नता के साथ बीते। एक दिन विशम्भर ने दोनों लड़कों की पढ़ाई के विषय मे पूछा।

उसकी बहिन ने कहा—"पाठक हमेशा दुःख देता रहता है और बहुत चंचल है, किन्तु मक्खन पढ़ने का बहुत इच्छुक है।"

यह सुनकर उसने कहा—"मैं पाठक को बम्बई ले जाकर पढ़ाऊँगा।"

पाठक भी चलने के लिये सहमत हो गया। माँ के लिये यह बहुत हर्ष की बात थी क्योंकि वह सर्वदा डरा करती थी कि कहीं किसी दिन पाठक मक्खन को नदी में न डुबो दे या उसे जान से न मार डाले।

पाठक प्रतिदिन मामा से पूछता था कि तुम किस दिन चलोगे। आखिर को चलने का दिन आ गया। उस रात पाठक से सोया भी न गया, सारा दिन जाने की खुशी में इधर-उधर फिरता रहा। उसने अपनी मछली पकड़ने की हत्थी, पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े और बड़ी पतंग भी मक्खन को दे दी, क्योंकि उसे जाते समय मक्खन से सहानुभूति सी हो गई थी।

: २ :

बम्बई पहुंच कर पाठक अपनी मामी से पहली बार मिला। वह उसके आने से कुछ प्रसन्न न हुई। क्योंकि उसके अपने तीन बच्चे ही काफी थे एक और चंचल लड़के का आ जाना उसके लिये आपत्ति थी।

ऐसे लड़के के लिए उस का अपना घर ही उसको स्वर्ग होता है उसके लिये एक नये घर में नये लोगों के साथ रहना बहुत कठिन हो गया।

पाठक को यहाँ पर साँस लेना कठिन हो गया। वह रातो को प्रतिदिन अपने नगर के स्वप्न देखा करता था और वहाँ जाने की इच्छा करता था। उस को वह स्थान याद आता जहाँ वह पतंग उड़ाता था और जहाँ वह जब कभी चाहता जाकर स्नान करता था। मां का ध्यान उसे दिन रात विकल करता रहता था। उसकी सारी शक्ति समाप्त हो गई......अब स्कूल में उस से

अधिक कमजोर कोई विद्यार्थी न था। जब कभी उसका अध्यापक उस से कोई प्रश्न करता, तो वह मौन खड़ा हो जाता और चुप चाप अध्यापक की मार सहन करता जब दूसरे लड़के खेलते तो वह अलग खड़ा होकर घरो की छतों को देखा करता।

एक दिन उसने वहुत साहस करके अपने मामा से मालूम किया—"मामा जी मै कब तक घर जाऊँगा ?"

मामा ने उत्तर दिया—"ठहरो जब तक कि छुट्टियां न हो जाएं।"

किन्तु छुट्टियो मे अभी बहुत दिन शेष थे, इस लिये उस को काफी प्रतीक्षा करनी पड़ी। इस बीच मे एक दिन उसने अपनी किताब खो दी। अब उस को अपना पाठ याद करना बहुत कठिन हो गया। प्रतिदिन उसका अध्यापक उसे बड़ी निर्दयता के साथ मारता था। उसकी दशा इतनी खराब हा गई कि उसके मामा के बेटे उसे अपना कहते हुए शरमाते थे। पाठक मामी के पास गया और कहने लगा—"मै स्कूल न जाऊँगा, मेरी पुस्तक खो गई है।"

मामी ने क्रोध से अपने होंठों को चबाते हुए कहा—"दुष्ट मैं तुझ को कहाँ से महीने मे पाँच बार पुस्तक खरीद कर दूँ ?"

इस समय पाठक के सिर मे दर्द उठा, वह सोचता था कि मलेरिया हो जाएगा, किन्तु सब से बड़ा सोच विचार यह था वीमार होने के पश्चात् वह घर वालो के लिये एक आपत्ति बन जाएगा।

दूसरे दिन प्रातः पाठक कहीं भी दिखाई न दिया। उसको चारों तरफ खोजा गया किन्तु वह न मिला। वर्षा बहुत अधिक हो रही थी और वह व्यक्ति जो उसे खोजने गये, बिल्कुल भीग

गये। आखिरकार विशम्भर ने पुलीस को सूचना दे दी।

: ३ :

मध्यान्ह पुलिस का सिपाही विशम्भर के द्वार पर आया। वर्षा अब भी हो रही थी और सड़कों पर पानी खड़ा था। दो सिपाही पाठक को हाथों पर उठाए हुए लाए और विशम्भर के सामने रख दिया। पाठक के सिर से पाँव तक कीचड़ लगी हुई और उसकी आँखें ज्वर से लाल थीं। विशम्भर उसको घर के अन्दर ले गया जब उसकी पत्नी ने पाठक को देखा तो कहा—"यह तुम क्या आपत्ति ले आये हो, अच्छा होता जो तुम इस को घर भिजवा देते।"

पाठक ने यह शब्द सुने और सिसकियाँ लेकर कहने लगा—"मैं घर जा तो रहा था परन्तु वे दोनों मुझे जबर्दस्ती ले आए।"

ज्वर बहुत तीव्र हो गया था, सारी रात वह अचेत पड़ा रहा, विशम्भर एक डाक्टर को लाया। पाठक ने आँखें खोलीं और छत की ओर देखते हुए कहा—"छुट्टियाँ आ गई है क्या ?"

विशम्भर ने उसके आँसू पूंछे और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसके सिरहाने बैठ गया। पाठक ने फिर बड़बड़ना शुरू किया—"माँ, माँ मुझे इस प्रकार न मारो, मैं सच सच बताता हूँ।'

दूसरे दिन पाठक को कुछ चेत हुआ। उसने कमरे के चहुँ ओर देखा और एक ठंडी साँस लेते हुए अपना सिर तकिये पर डाल दिया।

विशम्भर समझ गया और अपना मुख उसके समीप लाते हुए कहने लगा—"पाठक मैंने तुम्हारी माँ को बुलाया है।"

पाठक फिर उसी प्रकार चिल्लाने लगा। कुछ घंटो के पश्चात्

उसकी माँ रोती हुई कमरे में आई। विशम्भर ने उसको मौन रहने के लिये कहा किन्तु वह न मानी और अपने आप को पाठक की चारपाई पर डाल दिया और चिल्लाते हुए कहने लगी—"पाठक, मेरे प्यारे बेटे पाठक ?"

पाठक की साँस कुछ समय के लिये रुकी, उसकी नाड़ी हल्की पड़ी और उसने एक सिसकी ली।

उसकी माँ फिर चिल्लाई—"पाठक मेरे आँख के तारे, मेरे हृदय की कोपल।"

पाठक ने बहुत धीरे से अपना सिर दूसरी ओर किया और बिना किसी ओर देखते हुए कहा—"माँ! क्या छुट्टियाँ आ गई है ?"

———

विद्रोही

लोग कहते हैं अंग्रेजी पढ़ना और भाड़ झोंकना बराबर है। अंग्रेजी पढ़ने वालों की मिट्टी खराब है। अच्छे-अच्छे एम० ए० और बी० ए० मारे-मारे फिरते हैं, कोई उन्हें पूछता तक नहीं। मै इन बातो के विरुद्ध हूं। अंग्रेजी पढ़-लिख कर मै डाक्टर बना हूॅ सैकड़ों रुपये कमाता हूॅ। अंग्रेजी शिक्षा के विरोधी तनिक आॅख खोल कर मेरी दशा देखें।

सोमवार का दिन था। सवा नौबजे मेरे मित्र बाबू सन्तोष कुमार बी० एस० सी० एक नवयुवक रोगी को साथ लिये मेरे दवाखाने में आये। उस रोगी की आयु अठारह उन्नीस वर्ष से अधिक न थी। गेहुंवा रंग, बड़ी-बड़ी आॅखें, गठीला शरीर, कपड़े स्वदेशी, किन्तु मैले थे। सिर के बाल लम्बे और रूखे। उस नवयुवक को देख कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

सन्तोष कुमार ने नवयुवक का परिचय कराते हुए कहा—"आप जिला नदिया के निवासी है, नाम ललित कृष्ण बोस है किन्तु ललित के नाम से प्रसिद्ध हैं। एफ० ए० मे पढ़ते हैं परन्तु किसी कारणवश कालेज छोड़ दिया।'

मैने मुस्कुराते हुए पूछा—'आज कल आप क्या करते हैं?'

सन्तोष कुमार ने उत्तर दिया—'दो महीने पहिले यह किरण-प्रेस मे प्रुफ-रीडर थे परन्तु इस काम मे जी न लगने के

कारण नौकरी छोड़ दी। परसो से ज्वर से पीड़ित हैं, कोई अच्छी औषधि दीजिये।'

आज से पहिले भी मैंने इस नवयुवक को कहीं देखा है परन्तु कहाँ देखा है और कब ? यह स्मरण नहीं। रोग की छान बीन के पश्चात मैंने ललित से कहा—'मालूम होता है आप आवश्यकता से अधिक परिश्रम करते हैं, खैर कोई बात नहीं दो दिन में आराम हो जाएगा।

ललित बहुत मधुर-भाषी था। मै उसकी बातो पर लट्टू हो गया। मैंने कहा—'हर तीन घण्टे के अन्तर से दवा पीजियगा। दूध और साबूदाना के सिवाय कोई और चीज खाने की आवश्यकता नहीं। कल फिर आने का कष्ट कीजिएगा।'

ललित हंसने लगा। जाते समय मैंने उससे कल अवश्य आने के लिए कहा परन्तु ललित ने शाम ही को आने का वचन दिया।

ललित प्रतिदिन सुबह शाम मेरे यहां आने लगा। मैं इसके व्यवहार से बहुत प्रसन्न था। घण्टों इधर उधर की बाते होती थीं। ललित वास्तव में ललित था। वह मनुष्य नहीं देवता था।

ललित अब मेरे घर पर ही रहने लगा। मेरा लड़का उमाशंकर आठवीं कक्षा मे पढ़ता था। ललित ने कहा—'मैं इसको बंगला सिखाऊंगा, बंगला बड़ी मधुर भाषा है।' मैं स्वयं भी यही चाहता था। उमाशंकर ने बंगला पढ़ना शुरू कर दिया, ललित आज से उमाशंकर का अध्यापक हो गया।

: २ :

कलकत्ते जैसे बड़े नगर में यूं तो प्रत्येक त्योहार पर बड़ी रौनक होती है किन्तु दुर्गा पूजा के अवसर पर असाधारण

धूमधाम और चहल-पहल दिखाई देती है। दशहरा के दिन प्रायः सारे रास्तो पर जन समूह होता है। बड़े बूढ़ों में भी उस दिन एक विशेष हर्ष की भावना होती है, लड़कों और युवकों की तो चर्चा ही व्यर्थ है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी धुन में मस्त दिखाई देता है। जिस समय दुर्गा की सवारी सामने से जाती है तो "काली माई की जय" के उच्च जय घोष से आकाश गूंज उठता है, हृदय में एक अनुपम आवेश उत्पन्न होता है।

उस दिन दुर्गा पूजा थी। हम सब व्यक्ति भी शोभा देखने गये थे, ललित साथ था। पहले की अपेक्षा ललित में आज अधिक प्रदर्शन था। प्रत्येक स्थान पर वह देवी की मूर्ति को नमन करता, कभी उसके नेत्र लाल हो जाते और कभी उनमें आंसू उमड़ आते थे। मैं ने देखा, कभी वह हर्षातिरेक से नाचने कूदने लगता और कभी सर्वथा मौन हक्का बक्का होकर इधर-उधर देखता। मैंने बहुत प्रयत्न किया परन्तु उसकी इन चेष्टाओं को न समझ सका। उस से मालूम करने का साहस न हुआ।

हमारे पीछे एक गरीब बुढ़िया एक आठ नौ वर्ष के बच्चे को साथ लिये खम्भे की आड़ मे खड़ी थी। सम्भवतः अथाह जन समूह के कारण उसको किसी ओर जाने का साहस न होता था। वह भिखारिन थी। गरीबी के कारण पेट पीठ से लग गया था। उसने अपना दाहिना हाथ भीख के लिए पसार रखा था। बच्चा अनुनय-विनय करते हुए कह रहा था—"बाबा भूखे की सुध लेना, परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा।" किन्तु संसार मे गरीबों की कौन सुनता है। गरीब बुढ़िया की ओर किसी ने आंख उठा कर भी न देखा, प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रसन्नता में प्रसन्न था। बच्चे ने बुढ़िया से कहा—"घन्टों बीत गये परन्तु अब तक

दो पैसे मिले है, सोचता था आज दुर्गा पूजा है कुछ अधिक ही मिल जाएगा किन्तु खेद है कि चिल्लाते-चिल्लाते गला बैठ गया, कोई सुनता ही नही। जी मे आता है यहीं प्राण त्याग दू ।' यह कह कर बच्चा रोने लगा।

बुढ़िया की आँखो में आँसू झलकने लगे। उसने कहा 'बेटा! अपना भाग्य ही खोटा है, कल सत्तू, खाने के लिए ६ पैसे मिल गये थे आज उसका भी सहारा दिखाई नहीं देता। आज भूखे पेट ही रहना होगा। हाय! यह हमारे पाप का फल है।'

बुढ़िया ने एक ठण्डी उसांस ली और अपने फटे हुए मैले आंचल से अपनी और बच्चे की आंखें पोछी। बच्चा फिर उसी विनती से कहने लगा—'बाबा भूखे की सुध लेना, परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा।' परन्तु नक्कारखाने मे तूती की आवाज कौन सुनता है। इतना अधिक जन-समूह था किन्तु इस विनती पर कोई कान देकर सुनने वाला न था

ललित उस समय बुढ़िया की ओर देख रहा था। उसकी दुखित दशा देख कर उसका हृदय विकल हो गया। उसने अपनी जेब टटोली, उसमे फूटी कौडी भी न थी, बहुत व्याकुल हुआ। उसने अपनी दूसरी जेब मे हाथ डाला, कुछ आवश्यक कागजों के बीच मे एक अठन्नी निकल आई। ललित की निराशा प्रसन्नता में परिवर्तित हो गई, मुखड़ा खिल गया। वह अठन्नी उसने बुढ़िया के हाथ पर रख दी।

जिस प्रकार दस पॉच रुपये लगाने वाले को लाटरी मे दस बीस हजार रुपये मिल जाने पर प्रसन्नता होती है, जिस प्रकार एक युवती नये आभूषण पहन कर प्रसन्न होती है; जिस प्रकार एक सूखे हुए खेत मे वर्षा हो जाने से किसान हर्ष से फूला नही समाता, जिस प्रकार कोई नया कवि अपनी कविता को किसी

पत्रिका मे छपा हुआ देखकर प्रसन्न होता है। उस से कहीं अधिक उस गरीब बुढ़िया को अठन्नी पाकर प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता के मारे उसकी आंखों मे आंसू भर आये, वह निर्निमेष ललित की ओर देखने लगी। इसका भग्न हृदय ललित को सहस्रों आशीष दे रहा था।

यह दशा देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने अनेकों बार उस बुढ़िया को देखा था, उससे मुझे सहानुभूति भी थी किन्तु कभी यह साहस न हुआ कि उसकी सहायता करू ं। कभी हृदय मे आता कि उसको कुछ देना चाहिये, कभी यह कहता कि इसमें क्या रखा है संसार मे लाखों गरीब हैं किस किसकी सहायता करूंगा। ललित जिसे कभी-कभी भूखे रहने तक की दशा प्राप्त हो जाती, जिस को मैने कभी एक पैसे का पान तक चबाते न देखा था और जो मेरी दृष्टि में बहुत कजूस था, उसका यह दान देख कर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही।

स्वप्न मे उस दिन मुझे ललित की बहुत सी विशेषताएं दिखाई दीं। मालूम नहीं वह सत्य थीं या असत्य, किन्तु ज्योतिष के हिसाब से उनको सत्य ही समझना चाहिए। इस का कारण यह कि रात मुझे ढाई बजे नींद आई और वह स्वप्न मैने रात के अंतिम पहरों मे देखे थे।

: ३ :

ललित के सहयोग से उमाशंकर मे आश्चर्य जनक परिवर्तन हो गये थे। क्या तो वह बिना मोटर के घर से बाहर न निकलता था या अब यह दशा थी कि ललित के साथ वायु सेवन के लिए प्रति दिन कोसो पैदल निकल जाता, सिनेमा देखने का चस्का जाता रहा, व्यक्तिगत विलास सामग्री और प्रदर्शन के व्यसन को भी

तिलॉजली दे दी। अंग्रेजी शिक्षा से अब उसे घृणा हो गई।

रविवार के दिन मेरे यहां कुछ मित्रों की गार्डन-पार्टी थी, खूब आनन्द रहा। मैं अपने मित्रो के सत्कार मे लगा हुआ था। उधर उपेन्द्र कुमार, गोपाल, उमाशंकर और ललित में चुपके-चुपके बातें हो रही थी। ये लोग क्या बाते कर रहे थे, यह बताना कठिन है क्योकि प्रथम तो पार्टी की झंझटों मे उलझा हुआ था, उनकी ओर अधिक ध्यान न था, दूसरे वह मेरे से दूर थे और धीरे-धीरे बातें कर रहे थे, बीच-बीच में जब ये लोग खिल-खिलाकर हंस पड़ते तो मुझे भी हंसी आ जाती थी।

गोपाल बाबू को मै काफी समय से जानता हूँ रिश्ते मे यह सन्तोष कुमार के बहनोई होते हैं। प्रथम श्रेणी के शौकीन, प्रेमी स्वभाव के हैं। आज देखा तो कलाई रिस्ट वाच से खाली थी, रेशम की कमीज मे से सोने के बटन गायब थे, होटों की लाली गायब, बाल भी फैशन के न थे। मैंने सन्तोष कुमार से धीरे से कहा—'आज तो भाई साहब का कुछ और ही रंग है वह पहली सी चटक मटक दिखाई नही देती, क्या बात है? कुछ समझ मे नहीं आता।"

सन्तोष कुमार ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"आज कल इन पर स्वदेशी का भूत सवार है। कई महीने से यह इसी रंग मे रंगे हुए है, क्या आपने आज ही इन्हे इस दशा मे देखा है?'

मैने उत्तर दिया—'हाँ! और इसी लिये मुझे आश्चर्य हुआ?'

सन्तोष कुमार ने किसी सीमा तक उपेक्षा भाव से कहा—"हमें क्या मतलब? जो जिसके जी में आए करे, बार-बार समझाने पर भी यदि कोई न सुने तो क्या किया जाए। अधिक

कहने सुनने से अपनी प्रतिष्ठा पर आँच आती है। जैसी करनी वैसी भरनी प्रसिद्ध है। जब बन्दी गृह में चक्की पीसनी पड़ेगी तो आटे दाल का भाव मालूम हो जाएगा।"

मैंने कहा—'सन्तोष कुमार तुम बिल्कुल सत्य कहते हो जमाने की हवा कुछ बदली हुई दिखाई देती है ललित को भी कुछ स्वदेश की सनक है। यद्यपि मैं स्वदेशी का विरोधी हूं और देश भक्त मुझे एक आँख नहीं भाते तब भी मैं ललित की स्पष्ट वादिता और सात्विकता पर मुग्ध हूँ। उसकी रुचि मुझे बहुत भाती है।"

सन्तोष कहने लगा—'किंतु आप की भांति उसकी धाक नहीं बंध सकती। आप जब पाश्चात्य वस्त्र पहन कर बाहर निकलते होगे तो अशिक्षित मनुष्य भय से कांप उठते होंगे और शिक्षित व्यक्ति आप से नमस्कार करके आकाश पर पहुँच जाते होगे।'

मुझे हंसी आ गई, सन्तोष कुमार भी हंसने लगा।

उस दिन रात को मै अचेत सोया हुआ स्वप्न देख रहा था कि किसी ने मुझे झंझोड़ा, मै चौंक गया। आँखे खोलकर देखता हूँ तो मेरा नौकर रामलाल हाथ मे लालटेन लिये खड़ा हैं।

मुख पर हवाइयां उड़ रही है, शरीर थर-थर कांप रहा है। मैंने घबरा कर मालूम किया—"क्यों रामलाल क्या बात है, तुम कांप क्यो रहे हो ?"

रामलाल ने उत्तर दिया—"बाबू पुलिस ने सारा मकान घेर रखा है, कोई बात समझ मे नहीं आती। मैं कोई चोर या बद-माश न था, पुलिस का नाम सुनकर घबरा गया। दो एक बेइमानियां जो छुप कर की थी वह आँखों के सामने फिरने लगी। पूर्ण विश्वास हो गया कि पुलिस मुझे गिरफ्तार करने आई है।"

पुलीस की हलचल सुनकर मेरी चेतना जाती रही। साहस करके नीचे आया। राम लाल बोला—"आज्ञा हो तो दो चार करके पुलिस वालों को पृथ्वी पर लिटा दूँ ?"

मैने कहा—"सावधान! भूल कर भी ऐसा न करना, पुलिस से बिगाड़ करना अच्छा नही होता।"

द्वार खोल दिया। दो तीन सार्जेन्टो के साथ एक श्वेत वस्त्रधारी बंगाली और आठ दस सिपाही कमरे के अन्दर घुस आए।

बंगाली बाबू ने जेब से एक बादामी रग का कागज निकाला और मुझ को सम्बोधन करके कहा- 'डाक्टर साहब का यह वारंट गिरफ्तारी है, आपके यहाँ विद्रोही की गुप्त-मन्त्रणा का स्थान है, विद्रोही तुरन्त गिरफ्तार किया जाएगा।"

मुझ पर बिजली सी टूट पड़ी। मै समझा सम्भवतः मै ही विद्रोही हूँ और मेरी गिरफ्तारी का यह वारन्ट है, मुझ को पुलिस गिरफ्तार करने आई है। आह! अब कुशल नही, यदि फाँसी से बच रहा तो काले पानी अवश्य भेजा जाऊँगा।"

मैने कम्पकपाते हुए कहा—"विद्रोही और वह भी मेरे मकान में ? आप क्या कह रहे है। मैं सरकार का शुभाकांक्षी हूँ इसी वर्ष मुझे राय साहब की उपाधि मिली है। आप को भ्रम हुआ है।"

एक सार्जेन्ट ने त्योरी बदल कर उत्तर दिया—"अम काला आदमी नहीं है, गोरा आदमी कभी झूठ नहीं बोल सकता।"

बंगाली बाबू ने तनिक रुष्टता की मुद्रा से कहा—"पुलिस को भ्रम नहीं हो सकता. भ्रम प्रायः डाक्टरो को हुआ करता है।"

मैने पूछा—"विद्रोही का नाम क्या है ?"

कहा—"शरद कुमार।"

"बंगाली है ?"

"हाँ।"

"कहाँ का रहने वाला है ?"

"श्री रामपुर का।"

मेरे सिर से जैसे विपत्ति सी टल गई। नाम सुनते ही होठों पर हंसी खेलने लगी। मैंने कहा—"महाशय इस नाम का कोई व्यक्ति मेरे घर में नहीं है।"

"कोई और बंगाली आपके मकान में है ?"

"हाँ एक सीधा सादा नवयुवक है जो उमाशंकर को बङ्गला भाषा पढ़ाता है।"

उस श्वेत वस्त्रधारी बङ्गाली ने कहा—"हाँ उसकी ही खोज है। उसका असली नाम शरद् कुमार है। पुलिस महीनों से उसके पीछे हैरान है, हाथ ही न आता था।"

मैंने आश्चर्य से कहा—"वह तो जिला नदिया का रहने वाला है और आप कहते हैं कि अपराधी श्री राम पुर का निवासी है।"

"यह सब उसकी चालें है, वह श्री राम पुर का निवासी है। उसके पिता का नाम हृदय नाथ है जो एक प्रसिद्ध जमींन्दार हैं।"

मैंने फिर पूछा—"उस पर क्या अपराध है ?"

इन्सपेक्टर ने उत्तर दिया—"विद्रोह' यह एक गुप्त संस्था से उसका सम्बन्ध है। बम बनाना, चोरी, डकती, कतल, लूटमार यह उसकी देश सेवा है।

यह सुन कर मुझे हंसी आ गई। मैंने कहा—"आप महानुभाव एक सत्रह अठारह वर्ष के बंगाली नवयुवक को विद्रोही बना रहे हैं, यह भला कोई मानने की बात है। एक साधारण

युवक की गिरफतारी के लिये इतने व्यक्ति !"

चार सिपाही दरवाजे पर खड़े किये गये, घर की तलाशी शुरु हुई। दालान, कोठरी; बैठक, रसोई घर यहाँ तक कि दिशा मैदान के स्थान तक को ढूंढ डाला किन्तु ललित का कहीं पता न था। अलबत्ता उसके कमरे मे एक कागज का टुकड़ा मिला। पढ़कर सब आश्चर्य से एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। उसमे लिखा हुआ था:—

इन्सपेक्टर साहब नमस्ते

मैं फिर भाग रहा हूँ, आप के पुलिस वाले समझ गये होगे कि मै कितना भयानक व्यक्ति हूं जरा बचते रहियेगा।"

भारत माता का तुच्छ सेवक

शरद

बंगाली बाबू ने अपने माथे पर हाथ मार कर कहा—"बना बनाया खेल बिगड़ गया, कम्बख्त ने बड़ा चकमा दिया। महीनों की मेहनत पर पानी फिर गया।"

पुलिस निराश हो कर वापस चली गई। हम सब भी उमा शंकर के साथ ललित के लिये आँसू बहाने लगे। ललित से हम सब को बहुत अधिक प्रेम था, उस का यह काम देख कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।

महाशय मै वही डाक्टर हूँ, मेरी डाक्टरी बहुत चमक गई है, उमाशंकर मैट्रिक पास कर चुका है, उसकी दशा दिन प्रति-दिन बदलती जा रही है। यह वही उमाशंकर है जो अपने हाथों गिलास मे पानी भी नहीं डालता था आज वही गरीबों की सेवा के लिये हर समय उद्यत रहता है। ललित के पश्चात् स्वयं सेवक का जीता जागता चित्र मुझे उमाशंकर ही में दिखाई दिया। एक दिन बैठे-बैठे ललित का ध्यान आ गया,

आँखों में आँसू भर आये। उस की स्मृति से पुराना प्रेम ताजा हो गया। इसी बीच में उमाशंकर ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ मे एक अंग्रेजी का था। मुंह लाल हो रहा था, आखें डबडबा रही थीं। उसने भर्राई हुई आवाज में कहा—"ललित को आजीवन देश निकाले का दंड दिया गया है। वह कातिल नहीं था, वह देश का सच्चा सेवक, स्वतन्त्रता का पुजारी, सहृदय और सब से प्रेम का बरतावा करने वाला मनुष्य था।"

"ललित का उद्देश्य कत्ल या लूटमार करना रहा हो या विद्रोह, इस के विषय मे मै कुछ नहीं जानता, मैं उसके स्पष्ट-वादी स्वभाव और उस की सादगी का कायल हूँ। मुझे उस पर पूर्ण विश्वास था।" उमाशंकर के ये शब्द सुन कर मेरा हृदय दहल गया, उमाशंकर रोने लगा। मैं भी अधिक न सहन कर सका, मैंने अपने आँसू पूंछे। इसके पश्चात मैंने कहा—"उमाशंकर! ललित को देखने के लिए हृदय विकल है, वह कब तक वापस आयेगा।"

उमाशंकर ने इस का कुछ उत्तर न दिया, वह दहाड़ें मार-मार कर रोने लगा। उसकी यह दशा देख कर मुझ से भी सहन न हो सका। दशा भिन्न हो गई, हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गये, चिन्ता और क्रोध मे तिलमिलाने और छटपटाने लगा।

———

महालक्ष्मी प्रेस, दरीबा कलां, देहली।